

## UNIT-I

### राजनीतिक विज्ञान : अवधारणा, राज्य एवं अध्ययन की पद्धतियाँ

---

#### अध्याय- 1

#### राजनीतिक विज्ञान : अर्थ, प्रकृति एवं अध्ययन का क्षेत्र

---

#### अध्याय रूपरेखा

- 1.1 राजनीतिक विज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाएँ
- 1.2 राजनीतिक विज्ञान का ऐतिहासिक विकास
- 1.3 राजनीतिक विज्ञान की प्रकृति
- 1.4 राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र
- 1.5 राजनीति, राजनीतिक विज्ञान एवं राजनीतिक सिद्धांत में अंतर
- 1.6 अन्य सामाजिक विज्ञानों से संबंध
- 1.7 समकालीन परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक विज्ञान
- 1.8 अध्याय सारांश
- 1.9 अभ्यास प्रश्न
- 1.10 संदर्भ ग्रंथ (APA शैली)

#### अध्ययन उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी—

- राजनीतिक विज्ञान की अवधारणा, अर्थ तथा विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं को समझ सकेंगे।
- राजनीतिक विज्ञान के ऐतिहासिक विकास तथा बदलते स्वरूप का विश्लेषण कर सकेंगे।
- राजनीतिक विज्ञान की प्रकृति एवं अध्ययन क्षेत्र का समालोचनात्मक अध्ययन कर सकेंगे।
- राजनीति, राजनीतिक विज्ञान एवं राजनीतिक सिद्धांत के मध्य अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।
- राजनीतिक विज्ञान के अन्य सामाजिक विज्ञानों—जैसे इतिहास, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान एवं लोक प्रशासन—से अंतर्संबंधों को समझ सकेंगे।
- समकालीन लोकतांत्रिक शासन, सार्वजनिक नीति, डिजिटल राजनीति तथा वैश्विक राजनीति के संदर्भ में राजनीतिक विज्ञान की उपयोगिता का मूल्यांकन कर सकेंगे।

## भूमिका (Introduction)

मनुष्य स्वभाव से एक सामाजिक प्राणी है, किन्तु वह केवल सामाजिक प्राणी ही नहीं, बल्कि एक **राजनीतिक प्राणी (Political Animal)** भी है। उसका जीवन परिवार, समुदाय, जाति, वर्ग, धर्म, संस्कृति, अर्थव्यवस्था और राज्य जैसी अनेक संस्थाओं से प्रभावित होता है। इनमें राज्य वह संस्था है जो कानून बनाती है, न्याय की व्यवस्था करती है, सुरक्षा प्रदान करती है तथा समाज में व्यवस्था बनाए रखती है। इसलिए राज्य और उससे संबंधित संस्थाओं को समझे बिना मानव समाज को पूर्णतः नहीं समझा जा सकता।

प्राचीन यूनानी दार्शनिक **अरस्तू** ने कहा था कि "*मनुष्य स्वभावतः एक राजनीतिक प्राणी है।*" उनका आशय यह था कि मनुष्य अकेले नहीं रह सकता; वह समाज और राज्य के माध्यम से ही अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करता है। यद्यपि आधुनिक राजनीतिक विज्ञान अरस्तू की इस अवधारणा का व्यापक विस्तार कर चुका है, फिर भी उनका यह विचार आज भी राजनीतिक चिंतन की आधारशिला माना जाता है।

समकालीन विश्व में राजनीतिक विज्ञान का महत्व पहले की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ गया है। आज लोकतंत्र, मानवाधिकार, सामाजिक न्याय, पर्यावरण संरक्षण, वैश्वीकरण, डिजिटल शासन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, साइबर सुरक्षा, डेटा गोपनीयता, लैंगिक समानता और सतत विकास जैसे विषय सीधे-सीधे राजनीतिक निर्णयों से जुड़े हुए हैं। उदाहरण के लिए, डिजिटल भुगतान प्रणाली (UPI), आधार, डिजिटल इंडिया, राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP), जलवायु परिवर्तन से संबंधित नीतियाँ, महिला आरक्षण अधिनियम तथा डेटा संरक्षण कानून केवल प्रशासनिक निर्णय नहीं हैं; इनके पीछे जटिल राजनीतिक प्रक्रियाएँ, सार्वजनिक नीति निर्माण तथा लोकतांत्रिक विमर्श कार्य करते हैं। इसलिए राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन केवल राजनीतिक नेताओं या चुनावों तक सीमित नहीं है, बल्कि नागरिक जीवन के प्रत्येक महत्वपूर्ण पक्ष से जुड़ा हुआ है।

राजनीतिक विज्ञान का स्वरूप भी समय के साथ निरंतर विकसित हुआ है। प्रारम्भ में इसका अध्ययन मुख्यतः राज्य, सरकार और संविधान तक सीमित था। बाद में लोकतंत्र के विस्तार, सामाजिक आंदोलनों, उपनिवेशवाद के अंत, वैश्वीकरण तथा सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने इसके अध्ययन क्षेत्र को अत्यधिक व्यापक बना दिया। आज राजनीतिक विज्ञान में राजनीतिक व्यवहार, सार्वजनिक नीति, अंतरराष्ट्रीय संबंध, राजनीतिक संचार, चुनावी अध्ययन, सुशासन, लोक प्रशासन, सार्वजनिक वित्त, पर्यावरण राजनीति, पहचान की राजनीति, लैंगिक राजनीति तथा डिजिटल लोकतंत्र जैसे अनेक नए विषय सम्मिलित हो चुके हैं।

यदि किसी राज्य सरकार द्वारा नई शिक्षा नीति लागू की जाती है, किसानों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) निर्धारित किया जाता है, संसद कोई नया कानून पारित करती है, सर्वोच्च न्यायालय किसी संवैधानिक प्रावधान की व्याख्या करता है अथवा चुनाव आयोग स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करता है, तो ये सभी घटनाएँ राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन का विषय बन जाती हैं। इस प्रकार राजनीतिक विज्ञान हमें केवल यह नहीं बताता कि राज्य कैसे कार्य करता है, बल्कि यह भी समझने में सहायता करता है कि **राज्य को किस प्रकार कार्य करना चाहिए**, ताकि लोकतंत्र अधिक उत्तरदायी, न्यायपूर्ण और नागरिक-केंद्रित बन सके।

## संकल्पना मानचित्र (Concept Map) 1 :मानव समाज और राजनीतिक विज्ञान



अब जबकि राजनीतिक विज्ञान की आवश्यकता और समकालीन महत्त्व स्पष्ट हो चुका है, स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि **राजनीतिक विज्ञान वास्तव में है क्या?** क्या यह केवल राज्य का अध्ययन है, या सरकार का? क्या यह शक्ति (Power) का अध्ययन है, अथवा सार्वजनिक नीति (Public Policy) का? विभिन्न युगों के विद्वानों ने इन प्रश्नों के अलग-अलग उत्तर दिए हैं। इन्हीं विचारों के क्रमिक विकास को समझने के लिए अब हम राजनीतिक विज्ञान के अर्थ एवं परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे।

### 1.1 राजनीतिक विज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाएँ

मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ सामाजिक जीवन भी निरंतर जटिल होता गया। प्रारम्भिक समाजों में लोगों की आवश्यकताएँ सीमित थीं और सामाजिक संगठन अपेक्षाकृत सरल था। किन्तु कृषि, व्यापार, नगरीकरण, औद्योगीकरण तथा आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के परिणामस्वरूप समाज में नए प्रकार के संबंध, संघर्ष और सहयोग उत्पन्न हुए। इन परिवर्तनों के साथ ऐसी संस्थाओं की आवश्यकता अनुभव की गई जो समाज में व्यवस्था बनाए रखें, न्याय प्रदान करें, संसाधनों का वितरण करें तथा नागरिकों की सुरक्षा सुनिश्चित करें। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए राज्य और सरकार जैसी राजनीतिक संस्थाओं का विकास हुआ। इन संस्थाओं, उनसे संबंधित प्रक्रियाओं तथा सत्ता, शासन और सार्वजनिक नीति के अध्ययन ने आगे चलकर **राजनीतिक विज्ञान (Political Science)** का स्वरूप ग्रहण किया।

राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन जितना प्राचीन है, उसकी परिभाषा उतनी ही विकसित और परिवर्तनशील रही है। प्रत्येक युग में विद्वानों ने अपने समय की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के आधार पर राजनीतिक विज्ञान की व्याख्या की। इसलिए इसकी कोई एक सार्वभौमिक एवं सर्वमान्य परिभाषा उपलब्ध नहीं है। वास्तव में राजनीतिक विज्ञान का विकास मानव समाज के

विकास के साथ-साथ हुआ है। जिस प्रकार राज्य का स्वरूप बदलता गया, उसी प्रकार राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र भी विस्तृत होता गया।

## राजनीतिक विज्ञान का अर्थ

'राजनीति' शब्द का संबंध प्राचीन यूनान के शब्द 'पोलिस (Polis)' से माना जाता है। पोलिस का अर्थ नगर-राज्य (City-State) था। प्राचीन यूनान में एथेंस, स्पार्टा और थीब्स जैसे नगर-राज्य स्वतंत्र राजनीतिक इकाइयाँ थे। इन नगर-राज्यों में नागरिक सार्वजनिक जीवन, कानून निर्माण, न्याय, प्रशासन तथा युद्ध जैसे विषयों में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेते थे। इसलिए उस समय राजनीति का अर्थ मुख्यतः नगर-राज्य के शासन और नागरिक जीवन से संबंधित गतिविधियों से था।

समय के साथ नगर-राज्यों का स्थान विशाल राष्ट्रीय राज्यों ने ले लिया। लोकतंत्र का विस्तार हुआ, सार्वभौमिक मताधिकार स्थापित हुआ, संविधान विकसित हुए और आधुनिक प्रशासनिक संस्थाओं का निर्माण हुआ। परिणामस्वरूप राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन केवल राज्य तक सीमित नहीं रहा, बल्कि सरकार, संविधान, नागरिक अधिकार, राजनीतिक दल, चुनाव, लोक प्रशासन, सार्वजनिक नीति, अंतरराष्ट्रीय संबंध, वैश्विक शासन, मानवाधिकार तथा राजनीतिक व्यवहार जैसे विषय भी इसके अध्ययन का अभिन्न अंग बन गए।

आज यदि कोई नागरिक चुनाव में मतदान करता है, संसद किसी विधेयक को पारित करती है, सर्वोच्च न्यायालय संविधान की व्याख्या करता है, चुनाव आयोग स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव आयोजित करता है, या सरकार डिजिटल सेवाओं के माध्यम से नागरिकों तक कल्याणकारी योजनाएँ पहुँचाती है, तो ये सभी राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन के विषय हैं। इससे स्पष्ट होता है कि राजनीतिक विज्ञान केवल सत्ता प्राप्त करने की प्रक्रिया का अध्ययन नहीं है, बल्कि समाज में **सार्वजनिक जीवन के संगठन, शक्ति के वितरण तथा सामूहिक निर्णयों** का व्यापक अध्ययन है।

## परिभाषाएँ

राजनीतिक विज्ञान की अवधारणा को समझने के लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं का अध्ययन उपयोगी सिद्ध होता है। इन परिभाषाओं से न केवल इस विषय के विकासक्रम का ज्ञान होता है, बल्कि यह भी स्पष्ट होता है कि समय के साथ राजनीतिक विज्ञान का दृष्टिकोण किस प्रकार परिवर्तित हुआ।

प्राचीन यूनानी दार्शनिक **अरस्तू (Aristotle)** को राजनीतिक विज्ञान का जनक माना जाता है। उन्होंने राजनीति को सर्वोच्च विज्ञान (Master Science) की संज्ञा दी, क्योंकि उनके अनुसार राज्य का उद्देश्य केवल शासन करना नहीं, बल्कि नागरिकों के नैतिक एवं बौद्धिक विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करना है। अरस्तू के लिए राजनीति का अंतिम लक्ष्य '**श्रेष्ठ जीवन (Good Life)**' की स्थापना था। इस दृष्टिकोण में राजनीति केवल सत्ता का प्रयोग नहीं, बल्कि लोककल्याण की व्यवस्था है।

अरस्तू की यह अवधारणा आज भी प्रासंगिक दिखाई देती है। उदाहरण के लिए, जब कोई लोकतांत्रिक सरकार शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छ पेयजल, सार्वजनिक परिवहन, सामाजिक सुरक्षा अथवा पर्यावरण संरक्षण के लिए नीतियाँ बनाती है, तो उसका उद्देश्य केवल प्रशासन चलाना नहीं होता, बल्कि नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना भी होता है। इस प्रकार आधुनिक कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की अवधारणा में अरस्तू के विचारों की स्पष्ट झलक दिखाई देती है।

आधुनिक काल में राजनीतिक विज्ञान को अधिक व्यवस्थित रूप से परिभाषित करने का प्रयास किया गया। **जे. डब्ल्यू. गार्नर (J. W. Garner)** के अनुसार, "राजनीतिक विज्ञान का आरम्भ और अंत राज्य से होता है।" इस परिभाषा में राज्य को राजनीतिक विज्ञान का केंद्रीय विषय माना गया है। गार्नर का दृष्टिकोण उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों को प्रतिबिंबित करता है, जब राज्य को सामाजिक संगठन की सर्वोच्च संस्था माना जाता था।

गार्नर की परिभाषा राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन में राज्य की केंद्रीय भूमिका को स्पष्ट करती है, किन्तु आधुनिक संदर्भ में इसकी एक सीमा भी है। आज राजनीतिक विज्ञान केवल राज्य तक सीमित नहीं है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, अंतरराष्ट्रीय संगठन, नागरिक समाज, गैर-सरकारी संगठन (NGOs), डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म, मीडिया तथा वैश्विक संस्थाएँ भी राजनीतिक निर्णयों को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र के सम्मेलन, विश्व स्वास्थ्य संगठन की स्वास्थ्य संबंधी सलाह, या सोशल मीडिया मंचों का चुनावी व्यवहार पर प्रभाव—ये सभी ऐसे विषय हैं जिन्हें केवल राज्य के अध्ययन तक सीमित करके नहीं समझा जा सकता।

**जोहान कास्पर ब्लंटशली (Johann Kaspar Bluntschli)** ने राजनीतिक विज्ञान को राज्य के स्वरूप, उसके आधारभूत तत्वों, संगठन तथा कार्यों का अध्ययन करने वाला विज्ञान माना। उनकी परिभाषा गार्नर की अपेक्षा अधिक व्यापक थी क्योंकि इसमें राज्य की संरचना और उसके कार्यात्मक पक्ष दोनों को सम्मिलित किया गया। आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्थाओं को देखते हुए यह दृष्टिकोण विशेष रूप से महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में संसद, कार्यपालिका, न्यायपालिका, निर्वाचन आयोग, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG), वित्त आयोग तथा स्थानीय स्वशासन संस्थाओं की भूमिका को समझने के लिए राज्य के संगठनात्मक अध्ययन की आवश्यकता होती है।

बीसवीं शताब्दी के मध्य में राजनीतिक विज्ञान में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। विद्वानों ने यह अनुभव किया कि केवल राज्य और सरकार का अध्ययन पर्याप्त नहीं है। वास्तविक राजनीति को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि **शक्ति (Power)** समाज में किस प्रकार प्राप्त की जाती है, उसका प्रयोग कैसे होता है और विभिन्न समूह राजनीतिक निर्णयों को किस प्रकार प्रभावित करते हैं।

इसी संदर्भ में **हैरोल्ड डी. लासवेल (Harold D. Lasswell)** ने राजनीति को प्रसिद्ध शब्दों में परिभाषित किया—"**कौन, क्या, कब और कैसे प्राप्त करता है?**" (**Who Gets What, When and How?**)। इस परिभाषा ने राजनीतिक विज्ञान को शक्ति, संसाधनों के वितरण और निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया से जोड़ दिया। उदाहरण के लिए, यदि सरकार सीमित बजट में शिक्षा, स्वास्थ्य, रक्षा, कृषि और आधारभूत संरचना के बीच संसाधनों का वितरण करती है, तो यह केवल आर्थिक निर्णय नहीं होता, बल्कि एक राजनीतिक निर्णय भी होता है। विभिन्न सामाजिक समूह, राजनीतिक दल, हित समूह और नागरिक संगठन इस प्रक्रिया को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। इसलिए राजनीतिक विज्ञान यह समझने का प्रयास करता है कि संसाधनों का वितरण किन सिद्धांतों और प्रक्रियाओं के आधार पर किया जाता है।

आधुनिक राजनीतिक विज्ञान के विकास में **डेविड ईस्टन (David Easton)** का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। उन्होंने राजनीतिक विज्ञान को "**समाज में मूल्यों के अधिकारिक आवंटन (Authoritative Allocation of Values)**" का अध्ययन बताया। ईस्टन के अनुसार समाज में अनेक प्रकार के मूल्य—जैसे सुरक्षा, स्वतंत्रता, समानता, शिक्षा, स्वास्थ्य, अवसर और संसाधन—उपलब्ध होते हैं। इनका वितरण किस प्रकार होगा, इसका निर्णय राजनीतिक व्यवस्था करती है। इसलिए राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन केवल संस्थाओं का अध्ययन नहीं, बल्कि निर्णय-निर्माण की संपूर्ण प्रक्रिया का अध्ययन है।

भारत में आरक्षण नीति, शिक्षा का अधिकार, खाद्य सुरक्षा अधिनियम, आयुष्मान भारत योजना, मनरेगा, डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना (Digital Public Infrastructure) तथा महिलाओं के लिए राजनीतिक प्रतिनिधित्व जैसे विषय ईस्टन की अवधारणा को समझने में सहायता करते हैं। इन सभी मामलों में राज्य यह निर्णय करता है कि सीमित संसाधनों का उपयोग किस प्रकार किया जाए और किन सामाजिक वर्गों को प्राथमिकता दी जाए।

समकालीन राजनीतिक विचारक **एंड्रयू हेवुड (Andrew Heywood)** राजनीतिक विज्ञान को शक्ति, शासन, राज्य, सरकार, सार्वजनिक नीति तथा नागरिक जीवन के बीच संबंधों का अध्ययन मानते हैं। उनके अनुसार आधुनिक राजनीतिक विज्ञान केवल औपचारिक संस्थाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि उन अनौपचारिक प्रक्रियाओं का भी अध्ययन करता है जिनके माध्यम से समाज में शक्ति का प्रयोग और वितरण होता है। इसलिए मीडिया, जनमत, सामाजिक आंदोलन, पहचान की राजनीति, वैश्वीकरण, डिजिटल संचार तथा नागरिक समाज भी राजनीतिक विज्ञान के महत्वपूर्ण अध्ययन विषय बन चुके हैं।

यदि हाल के वर्षों में भारत में डिजिटल भुगतान प्रणाली, डेटा संरक्षण कानून, सोशल मीडिया के माध्यम से चुनाव प्रचार, ऑनलाइन जनसुनवाई, ई-गवर्नेंस तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग पर विचार किया जाए, तो स्पष्ट होता है कि राजनीति का स्वरूप निरंतर बदल रहा है। आज राजनीतिक निर्णय केवल संसद या विधानसभाओं तक सीमित नहीं हैं; वे डिजिटल मंचों, वैश्विक संस्थाओं, न्यायपालिका, विशेषज्ञ समितियों और नागरिक सहभागिता से भी प्रभावित होते हैं। इसीलिए आधुनिक राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन निरंतर व्यापक होता जा रहा है।

इन सभी परिभाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि राजनीतिक विज्ञान का विकास तीन प्रमुख चरणों से होकर गुज़रा है। प्रारम्भिक चरण में इसका केंद्र **राज्य** था; आधुनिक चरण में इसका केंद्र **सरकार और राजनीतिक संस्थाएँ** बनीं; जबकि समकालीन चरण में इसका केंद्र **शक्ति, सार्वजनिक नीति, नागरिक सहभागिता, लोकतांत्रिक शासन और वैश्विक राजनीतिक प्रक्रियाएँ** बन चुकी हैं। इसलिए आधुनिक राजनीतिक विज्ञान को किसी एक संस्था या गतिविधि तक सीमित नहीं किया जा सकता। यह मानव समाज के राजनीतिक संगठन, शासन, शक्ति, अधिकार, उत्तरदायित्व, सार्वजनिक नीति और लोकतांत्रिक जीवन का समग्र अध्ययन है।

## 1.2 राजनीतिक विज्ञान का ऐतिहासिक विकास

किसी भी ज्ञान-विषय को गहराई से समझने के लिए उसके ऐतिहासिक विकास का अध्ययन आवश्यक होता है। कोई भी विषय एक ही समय में पूर्ण विकसित स्वरूप में अस्तित्व में नहीं आता, बल्कि वह सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिवर्तनों के साथ क्रमशः विकसित होता है। राजनीतिक विज्ञान भी इसका अपवाद नहीं है। आज जिस राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन राज्य, सरकार, लोकतंत्र, संविधान, सार्वजनिक नीति, मानवाधिकार, वैश्विक शासन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल लोकतंत्र और अंतरराष्ट्रीय संबंधों जैसे व्यापक विषयों के साथ किया जाता है, उसका प्रारम्भ अत्यंत सीमित रूप में हुआ था।

राजनीतिक विज्ञान का विकास मानव सभ्यता के विकास के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है। जैसे-जैसे समाज की संरचना बदली, शासन की प्रकृति परिवर्तित हुई, नागरिक अधिकारों का विस्तार हुआ और लोकतांत्रिक संस्थाओं का विकास हुआ, वैसे-वैसे राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र भी विस्तृत होता गया। इसलिए राजनीतिक विज्ञान का इतिहास केवल विचारों का इतिहास नहीं है, बल्कि यह मानव समाज की राजनीतिक चेतना के क्रमिक विकास की कहानी भी है।

## प्राचीन काल : आदर्श राज्य की खोज

राजनीतिक चिंतन का प्रारम्भ प्राचीन सभ्यताओं में हुआ। भारत, यूनान, चीन तथा रोम जैसी प्राचीन सभ्यताओं में शासन, न्याय, कानून तथा राज्य की भूमिका पर गंभीर विचार किया गया। यद्यपि इन सभ्यताओं के राजनीतिक विचारों में अनेक भिन्नताएँ थीं, फिर भी सभी का उद्देश्य एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था की खोज करना था जो समाज में शांति, न्याय और व्यवस्था स्थापित कर सके।

भारत में वैदिक साहित्य, उपनिषदों, महाभारत, रामायण, बौद्ध एवं जैन साहित्य तथा विशेष रूप से **कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र'** में शासन और राज्य के संबंध में अत्यंत विकसित राजनीतिक विचार मिलते हैं। कौटिल्य ने राज्य को केवल शक्ति का केंद्र नहीं माना, बल्कि उसे लोककल्याण का माध्यम भी बताया। उन्होंने प्रशासन, कर व्यवस्था, न्याय, विदेश नीति, कूटनीति, गुप्तचर व्यवस्था तथा आर्थिक प्रबंधन का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया। आधुनिक लोक प्रशासन और राष्ट्रीय सुरक्षा से संबंधित अनेक सिद्धांतों की प्रारम्भिक झलक उनके विचारों में दिखाई देती है।

उदाहरण के लिए, आज भारत की विदेश नीति में राष्ट्रीय हित, रणनीतिक साझेदारी तथा सुरक्षा संबंधी जो विचार दिखाई देते हैं, उनका मूल तत्व कौटिल्य के **राजमंडल सिद्धांत** और यथार्थवादी दृष्टिकोण से जोड़ा जा सकता है। यद्यपि आधुनिक अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था प्राचीन भारत से भिन्न है, फिर भी राष्ट्रीय हित (National Interest) की अवधारणा आज भी विदेश नीति का केंद्रीय आधार बनी हुई है।

प्राचीन यूनान में राजनीतिक विज्ञान का व्यवस्थित विकास हुआ। **सुकरात (Socrates)** ने नैतिकता और न्याय पर बल दिया, **प्लेटो (Plato)** ने अपनी प्रसिद्ध कृति *The Republic* में आदर्श राज्य की परिकल्पना प्रस्तुत की तथा **अरस्तू (Aristotle)** ने पहली बार विभिन्न राज्यों का तुलनात्मक अध्ययन कर राजनीतिक विज्ञान को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने का प्रयास किया।

प्लेटो का आदर्श राज्य न्याय, शिक्षा और नैतिकता पर आधारित था। उनका विश्वास था कि जब तक दार्शनिक शासक (Philosopher King) शासन नहीं करेंगे, तब तक समाज में वास्तविक न्याय स्थापित नहीं हो सकता। दूसरी ओर, अरस्तू अधिक व्यावहारिक विचारक थे। उन्होंने विभिन्न संविधानों का अध्ययन किया और यह समझने का प्रयास किया कि वास्तविक परिस्थितियों में कौन-सी शासन व्यवस्था अधिक सफल हो सकती है। इस दृष्टि से प्लेटो आदर्शवादी (Idealist) और अरस्तू अनुभववादी (Empirical) परंपरा के प्रतिनिधि माने जाते हैं।

## मध्यकाल : धर्म और राजनीतिक सत्ता का संबंध

प्राचीन काल के पश्चात् यूरोप में मध्यकालीन राजनीतिक चिंतन का विकास हुआ। इस काल में राजनीति पर धर्म का गहरा प्रभाव था। राज्य और चर्च (Church) के संबंध, धार्मिक अधिकार तथा शासक की वैधता जैसे प्रश्न राजनीतिक चिंतन के केंद्र में रहे। अनेक विद्वानों का मत था कि राजा की सत्ता ईश्वर द्वारा प्रदान की गई है और उसका विरोध करना धार्मिक दृष्टि से अनुचित है।

**संत ऑगस्टीन (St. Augustine)** और **संत थॉमस एक्विनास (St. Thomas Aquinas)** जैसे विचारकों ने धर्म और राजनीति के संबंध का विस्तृत विवेचन किया। उनके विचारों में राज्य का उद्देश्य केवल प्रशासन चलाना नहीं था, बल्कि नैतिक और धार्मिक जीवन को भी प्रोत्साहित करना था।

भारत में इसी काल के दौरान दिल्ली सल्तनत और मुगल शासन का विकास हुआ। प्रशासनिक संरचना, भूमि व्यवस्था, राजस्व प्रणाली तथा केंद्रीय शासन की अवधारणाओं का विस्तार हुआ। अकबर द्वारा अपनाई गई **सुलह-ए-कुल** (सर्वधर्म समभाव) की नीति इस बात का उदाहरण है कि राजनीतिक स्थिरता के लिए धार्मिक सहिष्णुता कितनी महत्वपूर्ण हो सकती है।

## आधुनिक काल : व्यक्ति, अधिकार और लोकतंत्र का उदय

पंद्रहवीं से अठारहवीं शताब्दी के बीच यूरोप में पुनर्जागरण, धर्म-सुधार आंदोलन, वैज्ञानिक क्रांति तथा औद्योगिक क्रांति जैसे महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इन घटनाओं ने पारंपरिक राजनीतिक व्यवस्था को चुनौती दी और व्यक्ति की स्वतंत्रता, तर्क, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा नागरिक अधिकारों पर बल दिया।

इसी काल में **निकोलो मैकियावेली** (Niccolò Machiavelli) ने राजनीति को धर्म और नैतिकता से अलग करके यथार्थवादी दृष्टिकोण से समझाने का प्रयास किया। उनकी प्रसिद्ध कृति *The Prince* आधुनिक राजनीतिक यथार्थवाद की आधारशिला मानी जाती है। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि राज्य की स्थिरता और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए शासक को व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

इसके बाद **थॉमस हॉब्स**, **जॉन लॉक** तथा **जॉ-जाक रूसो** ने सामाजिक संविदा सिद्धांत के माध्यम से राज्य की उत्पत्ति, नागरिक अधिकारों तथा सरकार की वैधता का नया दर्शन प्रस्तुत किया। इन विचारकों ने यह स्थापित किया कि राज्य का आधार जनता की सहमति है, न कि केवल दैवी अधिकार।

इन विचारों का प्रभाव आगे चलकर **अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम (1776)** और **फ्रांसीसी क्रांति (1789)** पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व, मानवाधिकार तथा लोकप्रिय संप्रभुता जैसे सिद्धांत आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था के आधार बने।

भारतीय संविधान में भी इन विचारों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। मौलिक अधिकार, विधि का शासन, लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था तथा संविधान की सर्वोच्चता आधुनिक राजनीतिक चिंतन की इसी परंपरा का परिणाम हैं।

## उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी : वैज्ञानिक राजनीतिक विज्ञान की ओर

औद्योगिक क्रांति, पूँजीवाद, समाजवाद, राष्ट्रवाद तथा लोकतंत्र के विस्तार ने राजनीतिक विज्ञान को नए आयाम प्रदान किए। अब विद्वानों का ध्यान केवल राज्य की संरचना तक सीमित नहीं रहा, बल्कि सामाजिक वर्गों, आर्थिक असमानताओं, राजनीतिक दलों, दबाव समूहों तथा जनमत के अध्ययन पर भी केंद्रित होने लगा।

**कार्ल मार्क्स** ने राजनीतिक संस्थाओं का विश्लेषण आर्थिक संरचना और वर्ग संघर्ष के संदर्भ में किया। उनका मत था कि राज्य वर्गीय हितों की रक्षा करने वाली संस्था है। दूसरी ओर, **मैक्स वेबर** ने सत्ता, वैधता, नौकरशाही तथा नेतृत्व का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत किया।

बीसवीं शताब्दी के मध्य में **व्यवहारवादी आंदोलन (Behavioural Movement)** ने राजनीतिक विज्ञान में एक नई दिशा प्रदान की। इस आंदोलन ने राजनीतिक संस्थाओं की अपेक्षा व्यक्तियों के वास्तविक

राजनीतिक व्यवहार, मतदान की प्रवृत्तियों, नेतृत्व, राजनीतिक संस्कृति तथा राजनीतिक सहभागिता के अध्ययन पर बल दिया। सांख्यिकीय विश्लेषण, सर्वेक्षण, प्रश्नावली तथा अनुभवजन्य अनुसंधान इस काल की प्रमुख विशेषताएँ रही।

किन्तु शीघ्र ही यह अनुभव किया गया कि केवल आँकड़ों का अध्ययन समाज की वास्तविक समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता। इसलिए **उत्तर-व्यवहारवादी आंदोलन (Post-Behaviouralism)** का विकास हुआ, जिसने वैज्ञानिक अनुसंधान के साथ-साथ सामाजिक उत्तरदायित्व, लोकतांत्रिक मूल्यों तथा मानव कल्याण को भी राजनीतिक विज्ञान का महत्वपूर्ण उद्देश्य माना।

## इक्कीसवीं शताब्दी : राजनीतिक विज्ञान का बदलता स्वरूप

वर्तमान समय में राजनीतिक विज्ञान का स्वरूप अत्यंत व्यापक और बहुआयामी हो चुका है। वैश्वीकरण, सूचना प्रौद्योगिकी, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, जलवायु परिवर्तन, साइबर सुरक्षा, डिजिटल लोकतंत्र, वैश्विक स्वास्थ्य, प्रवासन, लैंगिक समानता तथा सतत विकास जैसे विषय अब राजनीतिक विज्ञान के प्रमुख अध्ययन क्षेत्र बन चुके हैं।

यदि भारत में डिजिटल इंडिया अभियान, आधार, यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI), जी-20 शिखर सम्मेलन, डेटा संरक्षण अधिनियम, ऑनलाइन सार्वजनिक सेवाएँ तथा ई-गवर्नेंस जैसी पहलों का अध्ययन किया जाए, तो स्पष्ट होता है कि आधुनिक राजनीति केवल संसद और सरकार तक सीमित नहीं है। आज तकनीकी कंपनियाँ, अंतरराष्ट्रीय संगठन, न्यायपालिका, नागरिक समाज, मीडिया, विशेषज्ञ समितियाँ और नागरिक स्वयं भी नीति-निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।

कोविड-19 महामारी इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण है। महामारी के दौरान सरकारों को केवल स्वास्थ्य संबंधी निर्णय ही नहीं लेने पड़े, बल्कि लॉकडाउन, वैक्सीन वितरण, डिजिटल शिक्षा, आर्थिक राहत, प्रवासी श्रमिकों की सहायता तथा अंतरराष्ट्रीय सहयोग जैसे अनेक जटिल निर्णय भी लेने पड़े। इन सभी विषयों का अध्ययन राजनीतिक विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है।

इस प्रकार राजनीतिक विज्ञान का विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। यह समाज के बदलते स्वरूप के साथ स्वयं को निरंतर पुनर्गठित करता रहता है। आज राजनीतिक विज्ञान केवल राज्य और सरकार का अध्ययन नहीं है, बल्कि यह शक्ति, लोकतंत्र, सार्वजनिक नीति, वैश्विक शासन, नागरिक सहभागिता और मानव कल्याण के समग्र अध्ययन का विज्ञान बन चुका है। यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता और समकालीन प्रासंगिकता है।

### 1.3 राजनीतिक विज्ञान की प्रकृति (Nature of Political Science)

राजनीतिक विज्ञान का अर्थ और ऐतिहासिक विकास समझने के पश्चात् यह जानना आवश्यक हो जाता है कि इसकी **प्रकृति (Nature)** क्या है। किसी भी विषय की प्रकृति से आशय उसके मूल स्वरूप, अध्ययन की पद्धति, उद्देश्य, विषय-वस्तु तथा अन्य ज्ञान-विषयों से उसके संबंध से होता है। यही कारण है कि राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन में इसकी प्रकृति का विश्लेषण अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है।

राजनीतिक विज्ञान की प्रकृति को लेकर लंबे समय से विद्वानों के बीच मतभेद रहे हैं। कुछ विद्वानों ने इसे **विज्ञान (Science)** माना है, जबकि अन्य ने इसे **कला (Art)** अथवा दोनों का समन्वय माना है। आधुनिक युग में अधिकांश विद्वानों का मत है कि राजनीतिक विज्ञान न तो प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति

पूर्णतः विज्ञान है और न ही केवल कला; बल्कि यह एक **सामाजिक विज्ञान (Social Science)** है, जिसमें वैज्ञानिक अध्ययन पद्धतियों के साथ-साथ मानवीय मूल्यों, नैतिकता, इतिहास और सामाजिक परिस्थितियों का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

राजनीतिक जीवन निरंतर परिवर्तनशील होता है। समाज, अर्थव्यवस्था, संस्कृति, तकनीक, वैश्विक परिस्थितियाँ तथा नागरिकों की अपेक्षाएँ समय के साथ बदलती रहती हैं। परिणामस्वरूप राजनीतिक संस्थाएँ, शासन-प्रणालियाँ और सार्वजनिक नीतियाँ भी बदलती रहती हैं। इसलिए राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन स्थिर तथ्यों के बजाय गतिशील सामाजिक वास्तविकताओं का अध्ययन है।

## क्या राजनीतिक विज्ञान एक विज्ञान है?

'विज्ञान' शब्द सुनते ही हमारे मन में भौतिकी, रसायन विज्ञान अथवा जीवविज्ञान जैसे विषयों की छवि उभरती है, जहाँ प्रयोगशाला में नियंत्रित परिस्थितियों में प्रयोग किए जाते हैं और समान परिस्थितियों में समान परिणाम प्राप्त होते हैं। स्वाभाविक रूप से प्रश्न उठता है कि क्या राजनीतिक विज्ञान भी उसी अर्थ में विज्ञान है?

यदि विज्ञान का अर्थ व्यवस्थित, तर्कसंगत, प्रमाण-आधारित तथा क्रमबद्ध ज्ञान से लिया जाए, तो राजनीतिक विज्ञान निश्चित रूप से एक विज्ञान है। राजनीतिक वैज्ञानिक तथ्यों का संग्रह करते हैं, विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना करते हैं, चुनावी व्यवहार का विश्लेषण करते हैं, जनमत का अध्ययन करते हैं तथा राजनीतिक घटनाओं के कारणों और परिणामों को समझने का प्रयास करते हैं।

उदाहरण के लिए, भारत में प्रत्येक लोकसभा चुनाव के बाद मतदान प्रतिशत, महिला मतदाताओं की भागीदारी, युवाओं की राजनीतिक सहभागिता तथा विभिन्न राज्यों के मतदान व्यवहार का विस्तृत सांख्यिकीय विश्लेषण किया जाता है। इसी प्रकार नीति आयोग, निर्वाचन आयोग, राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय तथा विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा किए गए सर्वेक्षण राजनीतिक व्यवहार को समझने में वैज्ञानिक पद्धतियों का उपयोग करते हैं। इन अध्ययनों में डेटा संग्रह, वर्गीकरण, विश्लेषण तथा निष्कर्ष निकालने की वैज्ञानिक प्रक्रिया अपनाई जाती है।

बीसवीं शताब्दी में व्यवहारवादी आंदोलन ने राजनीतिक विज्ञान को अधिक वैज्ञानिक बनाने का प्रयास किया। सर्वेक्षण, प्रश्नावली, साक्षात्कार, मतदान अध्ययन, सांख्यिकीय विश्लेषण तथा अनुभवजन्य अनुसंधान के माध्यम से राजनीतिक घटनाओं का वस्तुनिष्ठ अध्ययन किया जाने लगा। आज बिग डेटा (Big Data), कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence), मशीन लर्निंग तथा डेटा एनालिटिक्स का उपयोग भी चुनावी रुझानों, जनमत और सार्वजनिक नीति के विश्लेषण में किया जा रहा है।

इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि राजनीतिक विज्ञान वैज्ञानिक पद्धतियों का व्यापक उपयोग करता है। इसलिए इसे विज्ञान का स्वरूप प्राप्त होता है।

## राजनीतिक विज्ञान प्राकृतिक विज्ञानों से किस प्रकार भिन्न है?

यद्यपि राजनीतिक विज्ञान वैज्ञानिक पद्धतियों का उपयोग करता है, फिर भी यह प्राकृतिक विज्ञानों के समान नहीं है। इसका प्रमुख कारण यह है कि राजनीतिक विज्ञान का विषय **मानव व्यवहार** है, और मानव व्यवहार परिस्थितियों, भावनाओं, संस्कृति, विचारधारा, शिक्षा, आर्थिक स्थिति तथा सामाजिक परिवेश के अनुसार निरंतर बदलता रहता है।

यदि किसी वैज्ञानिक प्रयोग में समान परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाएँ, तो सामान्यतः समान परिणाम प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए, समुद्र तल पर शुद्ध जल 100 डिग्री सेल्सियस पर उबलता है। किंतु राजनीति में ऐसा निश्चित नियम संभव नहीं है। एक ही नीति दो अलग-अलग राज्यों या देशों में भिन्न परिणाम दे सकती है।

उदाहरण के लिए, पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं को आरक्षण देने की नीति पूरे भारत में समान रूप से लागू की गई, किन्तु विभिन्न राज्यों में उसके परिणाम अलग-अलग रहे। कहीं महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी अत्यंत प्रभावी रही, तो कहीं सामाजिक परंपराओं और स्थानीय परिस्थितियों के कारण अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हो सके। इससे स्पष्ट होता है कि राजनीतिक निर्णयों के परिणाम सामाजिक संदर्भों से गहराई से प्रभावित होते हैं।

इसी प्रकार कोविड-19 महामारी के दौरान अनेक देशों ने लगभग समान प्रकार के प्रतिबंध लगाए, लेकिन उनके परिणाम प्रत्येक देश में अलग-अलग रहे। इसका कारण केवल सरकारी नीति नहीं था, बल्कि नागरिकों का व्यवहार, स्वास्थ्य अवसंरचना, प्रशासनिक क्षमता, आर्थिक स्थिति और सामाजिक अनुशासन भी थे। इसलिए राजनीतिक विज्ञान में पूर्ण निश्चितता (Absolute Certainty) संभव नहीं होती।

## राजनीतिक विज्ञान : विज्ञान और कला का समन्वय

राजनीतिक विज्ञान केवल तथ्यों का अध्ययन नहीं करता; यह यह भी विचार करता है कि राज्य कैसा होना चाहिए, शासन कितना उत्तरदायी होना चाहिए, न्याय किसे कहा जाए, समानता और स्वतंत्रता के बीच संतुलन कैसे स्थापित किया जाए तथा लोकतंत्र को अधिक प्रभावी कैसे बनाया जाए। ऐसे प्रश्न केवल वैज्ञानिक विश्लेषण से हल नहीं होते; इनके लिए नैतिक चिंतन, दार्शनिक दृष्टिकोण और व्यावहारिक विवेक की भी आवश्यकता होती है।

इसी कारण अनेक विद्वानों ने राजनीतिक विज्ञान को एक **कला (Art)** भी माना है। यहाँ कला का अर्थ चित्रकला या संगीत नहीं, बल्कि शासन संचालन की दक्षता, नेतृत्व क्षमता, निर्णय लेने की योग्यता तथा सामाजिक समस्याओं का व्यावहारिक समाधान खोजने की क्षमता से है।

उदाहरण के लिए, संविधान में आपदा प्रबंधन के लिए कानूनी प्रावधान उपलब्ध हो सकते हैं, परन्तु किसी प्राकृतिक आपदा के समय प्रशासन को किस प्रकार जनता का विश्वास बनाए रखते हुए राहत कार्य संचालित करने हैं, यह केवल नियमों से निर्धारित नहीं होता। इसके लिए संवेदनशील नेतृत्व, प्रभावी संवाद, प्रशासनिक कौशल तथा मानवीय दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। यही राजनीतिक विज्ञान के कलात्मक पक्ष को दर्शाता है।

इस प्रकार राजनीतिक विज्ञान में वैज्ञानिक विश्लेषण और व्यावहारिक बुद्धिमत्ता दोनों का समान महत्त्व है।

## राजनीतिक विज्ञान एक सामाजिक विज्ञान के रूप में

आधुनिक विद्वानों का सामान्य मत है कि राजनीतिक विज्ञान मूलतः एक **सामाजिक विज्ञान** है। इसका कारण यह है कि इसका अध्ययन-विषय मनुष्य और उसका सामाजिक-राजनीतिक व्यवहार है। मनुष्य

समाज से अलग रहकर राजनीति नहीं करता; उसके राजनीतिक विचार परिवार, शिक्षा, धर्म, संस्कृति, मीडिया, आर्थिक स्थिति, भाषा, क्षेत्रीय पहचान तथा सामाजिक अनुभवों से प्रभावित होते हैं।

यदि किसी राज्य में युवा मतदाताओं का मतदान प्रतिशत बढ़ता है, तो इसका कारण केवल चुनाव आयोग का अभियान नहीं हो सकता। उच्च शिक्षा का प्रसार, सोशल मीडिया का प्रभाव, रोजगार संबंधी अपेक्षाएँ, राजनीतिक जागरूकता तथा नागरिक शिक्षा भी इस परिवर्तन के महत्वपूर्ण कारण हो सकते हैं। इसलिए राजनीतिक विज्ञान को समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, इतिहास तथा लोक प्रशासन जैसे विषयों से निरंतर सहायता प्राप्त होती है।

यही कारण है कि आधुनिक राजनीतिक अनुसंधान बहुविषयक (Interdisciplinary) दृष्टिकोण अपनाता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई शोधकर्ता किसानों के आंदोलन का अध्ययन करता है, तो उसे केवल राजनीतिक दलों की भूमिका ही नहीं, बल्कि कृषि अर्थव्यवस्था, ग्रामीण समाज, मीडिया, सार्वजनिक नीति, न्यायिक निर्णय तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का भी अध्ययन करना होगा।

## राजनीतिक विज्ञान की गतिशील एवं विकासशील प्रकृति

राजनीतिक विज्ञान की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक इसकी **गतिशीलता (Dynamic Nature)** है। यह विषय स्थिर नहीं है, बल्कि समाज के साथ निरंतर विकसित होता रहता है। प्रत्येक नई सामाजिक चुनौती राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन में नए प्रश्न जोड़ देती है।

बीसवीं शताब्दी में लोकतंत्र, राष्ट्रवाद, समाजवाद और उपनिवेशवाद प्रमुख विषय थे। इक्कीसवीं शताब्दी में कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल शासन, साइबर सुरक्षा, डेटा गोपनीयता, जलवायु परिवर्तन, वैश्विक स्वास्थ्य, प्रवासन, डिजिटल चुनाव अभियान और सोशल मीडिया राजनीति के नए अध्ययन क्षेत्र बन चुके हैं।

उदाहरण के लिए, आज यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है कि यदि कृत्रिम बुद्धिमत्ता चुनाव प्रचार, सरकारी निर्णयों अथवा न्यायिक प्रक्रियाओं में उपयोग की जाए, तो उसकी पारदर्शिता और उत्तरदायित्व कैसे सुनिश्चित किया जाएगा। इसी प्रकार सोशल मीडिया पर फैलने वाली भ्रामक सूचनाएँ (Misinformation) लोकतांत्रिक प्रक्रिया को किस प्रकार प्रभावित करती हैं, यह भी आधुनिक राजनीतिक विज्ञान का महत्वपूर्ण अध्ययन विषय है।

इस प्रकार राजनीतिक विज्ञान समय के साथ स्वयं को निरंतर अद्यतन करता रहता है। यही इसकी जीवंतता और समकालीन प्रासंगिकता का प्रमाण है।

### 1.4 राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र (Scope of Political Science)

किसी भी विषय की उपयोगिता और व्यापकता का आकलन उसके **अध्ययन क्षेत्र (Scope)** से किया जाता है। अध्ययन क्षेत्र से आशय उन विषयों, समस्याओं, संस्थाओं और प्रक्रियाओं से है जिनका व्यवस्थित अध्ययन उस विषय के अंतर्गत किया जाता है। राजनीतिक विज्ञान के संदर्भ में यह प्रश्न विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि समय के साथ इसका अध्ययन क्षेत्र निरंतर विस्तृत होता गया है। प्रारम्भिक काल में जहाँ इसका केंद्र केवल राज्य और शासन था, वहीं आज इसका विस्तार स्थानीय शासन से लेकर वैश्विक शासन, संविधान से लेकर कृत्रिम बुद्धिमत्ता, तथा चुनावों से लेकर डिजिटल लोकतंत्र तक हो चुका है।

राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र स्थिर नहीं है। जैसे-जैसे समाज में नई राजनीतिक चुनौतियाँ उत्पन्न होती हैं, वैसे-वैसे इस विषय में नए अध्ययन क्षेत्र जुड़ते जाते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ दशक पहले तक **साइबर सुरक्षा, डिजिटल डेटा संरक्षण, सोशल मीडिया राजनीति, कृत्रिम बुद्धिमत्ता का शासन पर प्रभाव तथा जलवायु शासन (Climate Governance)** जैसे विषय राजनीतिक विज्ञान के प्रमुख अध्ययन क्षेत्र नहीं थे। आज ये विषय न केवल शोध का केंद्र हैं, बल्कि सार्वजनिक नीति निर्माण में भी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

राजनीतिक विज्ञान का व्यापक अध्ययन क्षेत्र निम्नलिखित प्रमुख आयामों के माध्यम से समझा जा सकता है।

## राज्य का अध्ययन

राजनीतिक विज्ञान का सबसे प्राचीन और मूल अध्ययन विषय **राज्य (State)** है। राज्य वह सर्वोच्च राजनीतिक संस्था है जिसके माध्यम से समाज में कानून, व्यवस्था, न्याय और सुरक्षा सुनिश्चित की जाती है। राज्य के बिना संगठित राजनीतिक जीवन की कल्पना करना कठिन है। इसलिए राजनीतिक विज्ञान राज्य की उत्पत्ति, विकास, स्वरूप, उद्देश्य, आवश्यक तत्व, संप्रभुता तथा बदलती भूमिका का अध्ययन करता है।

प्राचीन काल में राज्य का प्रमुख उद्देश्य सुरक्षा और व्यवस्था बनाए रखना माना जाता था। आधुनिक लोकतांत्रिक युग में राज्य की भूमिका कहीं अधिक व्यापक हो गई है। आज राज्य शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा, पर्यावरण संरक्षण, डिजिटल अवसंरचना, आर्थिक विकास तथा नागरिक कल्याण जैसे अनेक क्षेत्रों में सक्रिय भूमिका निभाता है।

भारत में **आयुष्मान भारत, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, स्वच्छ भारत मिशन, डिजिटल इंडिया, जल जीवन मिशन** तथा **प्रधानमंत्री आवास योजना** जैसी योजनाएँ इस बात का उदाहरण हैं कि आधुनिक राज्य केवल कानून-व्यवस्था तक सीमित संस्था नहीं है, बल्कि विकास और लोककल्याण का प्रमुख माध्यम भी है।

## सरकार एवं शासन प्रणाली का अध्ययन

यदि राज्य राजनीतिक व्यवस्था का स्थायी स्वरूप है, तो **सरकार (Government)** उसका कार्यकारी रूप है। सरकार राज्य की इच्छाओं को व्यवहार में लागू करती है। इसलिए राजनीतिक विज्ञान सरकार की संरचना, कार्यप्रणाली, उत्तरदायित्व तथा विभिन्न शासन प्रणालियों का अध्ययन करता है।

लोकतंत्र, राजतंत्र, अधिनायकवाद, संसदीय शासन, राष्ट्रपति शासन तथा संघात्मक एवं एकात्मक शासन जैसी व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन राजनीतिक विज्ञान का महत्वपूर्ण भाग है।

भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है, जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में राष्ट्रपति प्रणाली लागू है। दोनों व्यवस्थाओं का उद्देश्य लोकतांत्रिक शासन स्थापित करना है, किन्तु उनकी संरचना, कार्यप्रणाली तथा उत्तरदायित्व की प्रक्रिया अलग-अलग है। राजनीतिक विज्ञान इन अंतरों का विश्लेषण करके यह समझने का प्रयास करता है कि विभिन्न सामाजिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों में कौन-सी व्यवस्था अधिक उपयुक्त सिद्ध होती है।

इसी प्रकार पंचायती राज संस्थाओं, नगरपालिकाओं तथा नगर निगमों का अध्ययन भी राजनीतिक विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है क्योंकि लोकतंत्र केवल राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं, बल्कि स्थानीय स्तर पर भी संचालित होता है।

## संविधान एवं विधिक व्यवस्था का अध्ययन

किसी भी लोकतांत्रिक राज्य का आधार उसका **संविधान (Constitution)** होता है। संविधान राज्य की मूल संरचना निर्धारित करता है, सरकार की शक्तियों को सीमित करता है तथा नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों का निर्धारण करता है।

राजनीतिक विज्ञान संविधान के सिद्धांतों, संवैधानिक संस्थाओं, न्यायिक व्यवस्था तथा संवैधानिक संशोधनों का अध्ययन करता है। इसके माध्यम से यह समझा जाता है कि शासन किस प्रकार विधि के शासन (Rule of Law) के अधीन संचालित होता है।

भारतीय संविधान विश्व का सबसे विस्तृत लिखित संविधान माना जाता है। इसमें मौलिक अधिकार, राज्य के नीति-निर्देशक तत्व, मौलिक कर्तव्य, स्वतंत्र न्यायपालिका तथा संघीय शासन जैसी अनेक विशेषताएँ सम्मिलित हैं। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए ऐतिहासिक निर्णय—जैसे **केशवानंद भारती मामला**, **मिनर्वा मिल्स मामला** तथा **पुट्टास्वामी बनाम भारत संघ (गोपनीयता का अधिकार)**—राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं क्योंकि ये संविधान और लोकतंत्र की बदलती व्याख्या को स्पष्ट करते हैं।

## शक्ति, सत्ता एवं वैधता का अध्ययन

राजनीतिक विज्ञान का एक अत्यंत महत्वपूर्ण अध्ययन क्षेत्र **शक्ति (Power)** है। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में यह प्रश्न महत्वपूर्ण होता है कि शक्ति किसके पास है, उसका प्रयोग किस प्रकार किया जाता है, उसकी वैधता (Legitimacy) का आधार क्या है तथा नागरिक उसे किस सीमा तक स्वीकार करते हैं।

आधुनिक लोकतंत्र में शक्ति केवल सरकार के पास ही नहीं होती। न्यायपालिका, मीडिया, नागरिक समाज, उद्योग जगत, सामाजिक आंदोलन, दबाव समूह तथा डिजिटल मंच भी राजनीतिक निर्णयों को प्रभावित करते हैं।

उदाहरण के लिए, सूचना का अधिकार (RTI) आंदोलन ने भारत में शासन की पारदर्शिता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी प्रकार महिलाओं के आरक्षण, पर्यावरण संरक्षण तथा भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलनों ने यह स्पष्ट किया कि लोकतंत्र में नागरिक समाज भी शक्ति का एक प्रभावी स्रोत है।

आज सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म भी जनमत निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। चुनावों के दौरान डिजिटल अभियान, ऑनलाइन जनसंपर्क तथा सूचना का तीव्र प्रसार राजनीतिक निर्णयों को प्रभावित करता है। इसलिए आधुनिक राजनीतिक विज्ञान शक्ति की पारंपरिक अवधारणा से आगे बढ़कर **डिजिटल शक्ति (Digital Power)** और **सूचनात्मक शक्ति (Informational Power)** का भी अध्ययन करता है।

## लोकतंत्र, चुनाव एवं राजनीतिक सहभागिता

लोकतंत्र केवल एक शासन प्रणाली नहीं, बल्कि नागरिकों की सक्रिय भागीदारी पर आधारित जीवन-पद्धति है। इसलिए राजनीतिक विज्ञान लोकतंत्र की अवधारणा, चुनाव प्रणाली, मतदाता व्यवहार, राजनीतिक दलों, दबाव समूहों तथा जनमत निर्माण की प्रक्रियाओं का विस्तृत अध्ययन करता है।

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। प्रत्येक आम चुनाव में करोड़ों नागरिक मतदान करते हैं। चुनाव आयोग स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने के लिए इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (EVM), मतदाता सत्यापन प्रणाली (VVPAT), आदर्श आचार संहिता तथा व्यापक मतदाता जागरूकता कार्यक्रमों का उपयोग करता है। इन व्यवस्थाओं का अध्ययन राजनीतिक विज्ञान के विद्यार्थियों को लोकतंत्र की व्यावहारिक कार्यप्रणाली को समझने में सहायता प्रदान करता है।

केवल मतदान करना ही लोकतांत्रिक सहभागिता नहीं है। ग्राम सभा में भाग लेना, जनसुनवाई में अपनी बात रखना, सार्वजनिक नीतियों पर सुझाव देना, सामाजिक आंदोलनों में शांतिपूर्ण भागीदारी करना तथा नागरिक दायित्वों का निर्वहन करना भी लोकतांत्रिक सहभागिता के महत्वपूर्ण रूप हैं।

## सार्वजनिक नीति एवं लोक प्रशासन

आधुनिक राजनीतिक विज्ञान में **सार्वजनिक नीति (Public Policy)** का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सरकारें केवल कानून नहीं बनाती; वे शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, रोजगार, पर्यावरण, सामाजिक सुरक्षा तथा डिजिटल शासन से संबंधित नीतियाँ भी बनाती हैं। इन नीतियों का निर्माण कैसे होता है, उनका क्रियान्वयन किस प्रकार किया जाता है तथा उनके परिणाम क्या होते हैं—इन सभी प्रश्नों का अध्ययन राजनीतिक विज्ञान करता है।

उदाहरण के लिए, यदि सरकार किसानों की आय बढ़ाने के लिए नई कृषि नीति बनाती है, नई शिक्षा नीति लागू करती है या स्वच्छ ऊर्जा को प्रोत्साहित करने के लिए सौर ऊर्जा मिशन प्रारम्भ करती है, तो इन नीतियों का सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक प्रभाव राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन का विषय बन जाता है।

इसी प्रकार लोक प्रशासन यह सुनिश्चित करता है कि सार्वजनिक नीतियाँ प्रभावी ढंग से नागरिकों तक पहुँचें। इसलिए आधुनिक राजनीतिक विज्ञान में नीति-निर्माण और प्रशासनिक क्रियान्वयन का अध्ययन परस्पर पूरक माना जाता है।

## अंतरराष्ट्रीय राजनीति एवं वैश्विक शासन

आज का विश्व परस्पर निर्भर (Interdependent) हो चुका है। किसी एक देश की आर्थिक, राजनीतिक या पर्यावरणीय समस्या अनेक अन्य देशों को भी प्रभावित कर सकती है। इसलिए राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन राष्ट्रीय सीमाओं तक सीमित नहीं रह गया है।

संयुक्त राष्ट्र, विश्व व्यापार संगठन (WTO), विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO), अंतरराष्ट्रीय न्यायालय (ICJ), जी-20, ब्रिक्स (BRICS) तथा सार्क (SAARC) जैसी संस्थाएँ वैश्विक शासन की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

भारत की विदेश नीति, 'पड़ोसी प्रथम' (Neighbourhood First), 'एक्ट ईस्ट नीति', अंतरराष्ट्रीय सौर गठबंधन (International Solar Alliance) तथा जी-20 की अध्यक्षता जैसे विषय अंतरराष्ट्रीय राजनीति के समकालीन उदाहरण हैं। इनके अध्ययन से स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीय हित और वैश्विक सहयोग के बीच संतुलन स्थापित करना आधुनिक राजनीतिक विज्ञान की एक प्रमुख चुनौती है।

## समकालीन उभरते अध्ययन क्षेत्र

इक्कीसवीं शताब्दी में राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र अभूतपूर्व रूप से विस्तृत हुआ है। आज निम्नलिखित विषय तेजी से महत्त्व प्राप्त कर रहे हैं—

- डिजिटल लोकतंत्र (Digital Democracy)
- कृत्रिम बुद्धिमत्ता और शासन (AI and Governance)
- साइबर सुरक्षा
- डेटा संरक्षण और गोपनीयता
- जलवायु परिवर्तन एवं पर्यावरण राजनीति
- लैंगिक न्याय
- मानवाधिकार
- प्रवासन (Migration)
- सतत विकास लक्ष्य (SDGs)
- डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना
- ई-गवर्नेंस
- स्मार्ट शहर
- सोशल मीडिया और राजनीतिक संचार

यदि सरकार कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग सार्वजनिक सेवाओं की दक्षता बढ़ाने के लिए करती है, तो उसके साथ डेटा सुरक्षा, पारदर्शिता, जवाबदेही तथा नागरिक अधिकारों से जुड़े प्रश्न भी उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए लिए गए राजनीतिक निर्णय केवल पर्यावरण तक सीमित नहीं रहते, बल्कि कृषि, उद्योग, ऊर्जा, रोजगार और अंतरराष्ट्रीय संबंधों को भी प्रभावित करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक राजनीतिक विज्ञान बहुआयामी और अंतर्विषयक स्वरूप ग्रहण कर चुका है।

## संकल्पना मानचित्र (Concept Map) 2: राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र



### 1.5 राजनीति, राजनीतिक विज्ञान एवं राजनीतिक सिद्धांत : एक तुलनात्मक अध्ययन

राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन प्रारम्भ करने वाले विद्यार्थियों के सामने सबसे सामान्य प्रश्न यह होता है कि 'राजनीति (Politics)', 'राजनीतिक विज्ञान (Political Science)' और 'राजनीतिक सिद्धांत (Political Theory)' में क्या अंतर है। सामान्य बोलचाल में इन तीनों शब्दों का प्रयोग प्रायः एक-दूसरे के स्थान पर कर दिया जाता है, जबकि अकादमिक दृष्टि से इनका अर्थ, उद्देश्य तथा अध्ययन क्षेत्र अलग-अलग हैं। इन अवधारणाओं के मध्य अंतर को समझे बिना राजनीतिक विज्ञान की वास्तविक प्रकृति को समझना कठिन है।

इन तीनों अवधारणाओं के बीच संबंध अवश्य है, किन्तु वे समानार्थी नहीं हैं। यदि राजनीति को **व्यवहार (Practice)**, राजनीतिक सिद्धांत को **विचार (Ideas)** और राजनीतिक विज्ञान को **व्यवस्थित अध्ययन (Systematic Study)** कहा जाए, तो इनका मूल अंतर सहज रूप से समझा जा सकता है।

## राजनीति (POLITICS) : सार्वजनिक जीवन में निर्णय और शक्ति की प्रक्रिया

राजनीति का संबंध उन प्रक्रियाओं से है जिनके माध्यम से समाज में शक्ति का प्रयोग किया जाता है, निर्णय लिए जाते हैं, संसाधनों का वितरण होता है तथा विभिन्न हितों के बीच संतुलन स्थापित किया जाता है। राजनीति केवल चुनाव लड़ने, सरकार बनाने या राजनीतिक दलों की गतिविधियों तक सीमित नहीं है। वास्तव में जहाँ कहीं भी सामूहिक निर्णय लिए जाते हैं और विभिन्न हितों के बीच समन्वय स्थापित किया जाता है, वहाँ राजनीति उपस्थित होती है।

यदि किसी ग्राम पंचायत में सड़क निर्माण के लिए सीमित धन उपलब्ध है और यह निर्णय लेना है कि पहले किस गाँव या वार्ड में सड़क बनाई जाए, तो यह एक राजनीतिक निर्णय है। इसी प्रकार किसी विश्वविद्यालय में नई शैक्षणिक नीति लागू करने, किसी नगर निगम द्वारा जल आपूर्ति की प्राथमिकता निर्धारित करने अथवा संसद में किसी विधेयक पर बहस करने की प्रक्रिया भी राजनीति का हिस्सा है।

राजनीति का एक महत्वपूर्ण पक्ष **शक्ति (Power)** है। प्रत्येक समाज में विभिन्न व्यक्ति, संस्थाएँ और समूह अपने हितों की रक्षा करने तथा सार्वजनिक नीतियों को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। इसलिए राजनीति सहयोग और संघर्ष, दोनों का अध्ययन करती है। लोकतांत्रिक समाज में यह संघर्ष संविधान, कानून, चुनाव, जनमत तथा संवाद के माध्यम से संचालित होता है।

समकालीन युग में राजनीति का स्वरूप और अधिक व्यापक हो गया है। आज सोशल मीडिया अभियान, डिजिटल जनमत, नागरिक आंदोलन, पर्यावरण संरक्षण, लैंगिक समानता, डेटा गोपनीयता तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता से संबंधित नीतियाँ भी राजनीति का हिस्सा बन चुकी हैं। इससे स्पष्ट होता है कि राजनीति केवल संसद या विधानसभाओं तक सीमित गतिविधि नहीं, बल्कि सार्वजनिक जीवन का सतत और गतिशील आयाम है।

## राजनीतिक विज्ञान (POLITICAL SCIENCE) : राजनीति का व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक अध्ययन

यदि राजनीति व्यवहार है, तो राजनीतिक विज्ञान उस व्यवहार का **संगठित, विश्लेषणात्मक और वैज्ञानिक अध्ययन** है। राजनीतिक विज्ञान का उद्देश्य केवल यह जानना नहीं है कि राजनीतिक घटनाएँ घटित कैसे होती हैं, बल्कि यह समझना भी है कि वे क्यों घटित होती हैं, उनके क्या परिणाम होते हैं और उन्हें किस प्रकार अधिक प्रभावी एवं न्यायपूर्ण बनाया जा सकता है।

राजनीतिक विज्ञान राज्य, सरकार, संविधान, राजनीतिक दल, चुनाव, सार्वजनिक नीति, न्यायपालिका, लोक प्रशासन, अंतरराष्ट्रीय संबंध, राजनीतिक व्यवहार तथा लोकतांत्रिक संस्थाओं का व्यवस्थित अध्ययन करता है। यह तथ्यों का विश्लेषण करता है, विभिन्न देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना करता है तथा राजनीतिक समस्याओं के कारणों और समाधानों की खोज करता है।

उदाहरण के लिए, यदि किसी चुनाव में युवाओं का मतदान प्रतिशत कम हो जाता है, तो राजनीति उस घटना का प्रत्यक्ष व्यवहार हो सकती है, जबकि राजनीतिक विज्ञान यह अध्ययन करेगा कि मतदान प्रतिशत कम होने के पीछे कौन-कौन से सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक अथवा राजनीतिक कारण कार्य कर रहे हैं। साथ ही यह भी विश्लेषण करेगा कि युवाओं की लोकतांत्रिक भागीदारी कैसे बढ़ाई जा सकती है।

इसी प्रकार यदि संसद कोई नया डेटा संरक्षण कानून पारित करती है, तो राजनीतिक विज्ञान केवल उस कानून की धाराओं का अध्ययन नहीं करेगा, बल्कि यह भी विश्लेषण करेगा कि उसका नागरिक अधिकारों, डिजिटल अर्थव्यवस्था, प्रशासनिक पारदर्शिता और लोकतांत्रिक शासन पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

इस प्रकार राजनीतिक विज्ञान राजनीति की घटनाओं को व्यापक सामाजिक, आर्थिक, ऐतिहासिक और दार्शनिक संदर्भों में समझने का प्रयास करता है।

## राजनीतिक सिद्धांत (POLITICAL THEORY) : राजनीति का दार्शनिक आधार

राजनीतिक सिद्धांत राजनीतिक जीवन से जुड़े मूलभूत प्रश्नों पर विचार करता है। यह पूछता है कि आदर्श राज्य कैसा होना चाहिए? न्याय क्या है? समानता का वास्तविक अर्थ क्या है? स्वतंत्रता की सीमाएँ क्या हैं? राज्य की शक्ति कितनी होनी चाहिए? नागरिकों के अधिकार और कर्तव्य क्या होने चाहिए?

राजनीतिक सिद्धांत का उद्देश्य केवल वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था का वर्णन करना नहीं है, बल्कि उसके नैतिक एवं दार्शनिक आधारों का विश्लेषण करना भी है। इसलिए इसमें तथ्यों के साथ-साथ मूल्यों (Values) का भी विशेष महत्त्व होता है।

उदाहरण के लिए, यदि कोई सरकार राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर नागरिकों की डिजिटल गतिविधियों की निगरानी करती है, तो राजनीतिक सिद्धांत यह प्रश्न उठाएगा कि सुरक्षा और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच संतुलन कैसे स्थापित किया जाए। इसी प्रकार कृत्रिम बुद्धिमत्ता के बढ़ते उपयोग के संदर्भ में यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्या एल्गोरिदम द्वारा लिए गए निर्णय लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व और नैतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप हैं।

राजनीतिक सिद्धांत प्लेटो, अरस्तू, मैकियावेली, हॉब्स, लॉक, रूसो, मार्क्स, जॉन रॉल्स, रॉबर्ट नोज़िक, अमर्त्य सेन तथा अनेक समकालीन विचारकों के माध्यम से विकसित हुआ है। इन विचारकों ने विभिन्न युगों में न्याय, स्वतंत्रता, समानता, अधिकार, लोकतंत्र और राज्य की भूमिका पर नए दृष्टिकोण प्रस्तुत किए।

## तीनों अवधारणाओं का अंतर्संबंध

यद्यपि राजनीति, राजनीतिक विज्ञान और राजनीतिक सिद्धांत अलग-अलग अवधारणाएँ हैं, फिर भी वे एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। राजनीति हमें वास्तविक राजनीतिक घटनाएँ और व्यवहार प्रदान करती है। राजनीतिक विज्ञान उन घटनाओं का व्यवस्थित अध्ययन और विश्लेषण करता है। राजनीतिक सिद्धांत उन घटनाओं का नैतिक और दार्शनिक मूल्यांकन करता है तथा यह विचार करता है कि राजनीतिक व्यवस्था को अधिक न्यायपूर्ण और उत्तरदायी कैसे बनाया जा सकता है।

इसे एक सरल उदाहरण से समझा जा सकता है। यदि संसद में **महिला आरक्षण अधिनियम** पारित होता है, तो—

- उसका पारित होना, राजनीतिक दलों के बीच सहमति बनना और संसदीय बहस **राजनीति** का विषय है।

- कानून बनने की प्रक्रिया, उसके संवैधानिक आधार, प्रतिनिधित्व पर प्रभाव तथा चुनावी परिणामों का अध्ययन **राजनीतिक विज्ञान** का विषय है।
- यह विचार करना कि महिलाओं का राजनीतिक प्रतिनिधित्व लोकतांत्रिक न्याय और समानता के सिद्धांतों की दृष्टि से क्यों आवश्यक है, **राजनीतिक सिद्धांत** का विषय है।

इसी प्रकार यदि सरकार कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित सार्वजनिक सेवाएँ प्रारम्भ करती है—

- उसका क्रियान्वयन राजनीति का हिस्सा है।
- उसकी प्रशासनिक दक्षता, नीति-निर्माण और प्रभाव का अध्ययन राजनीतिक विज्ञान करेगा।
- जबकि उससे जुड़े नैतिक प्रश्न—जैसे गोपनीयता, पारदर्शिता, उत्तरदायित्व और नागरिक स्वतंत्रता—राजनीतिक सिद्धांत के अंतर्गत आएँगे।

इस प्रकार ये तीनों क्षेत्र परस्पर पूरक हैं और मिलकर राजनीतिक जीवन की समग्र समझ विकसित करते हैं।

## सारणी (TABLE) 1: राजनीति, राजनीतिक विज्ञान एवं राजनीतिक सिद्धांत में अंतर

| आधार             | राजनीति (Politics)                      | राजनीतिक विज्ञान (Political Science)                  | राजनीतिक सिद्धांत (Political Theory)       |
|------------------|-----------------------------------------|-------------------------------------------------------|--------------------------------------------|
| मूल स्वरूप       | राजनीतिक व्यवहार एवं गतिविधि            | राजनीति का व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक अध्ययन             | राजनीति का दार्शनिक एवं वैचारिक अध्ययन     |
| प्रमुख प्रश्न    | शक्ति कैसे प्राप्त और प्रयुक्त होती है? | राजनीतिक संस्थाएँ और प्रक्रियाएँ कैसे कार्य करती हैं? | राज्य कैसा होना चाहिए? न्याय क्या है?      |
| अध्ययन का केंद्र | व्यवहार, संघर्ष, निर्णय, नेतृत्व        | राज्य, सरकार, संविधान, नीति, चुनाव, शक्ति             | न्याय, स्वतंत्रता, समानता, अधिकार, नैतिकता |
| दृष्टिकोण        | व्यावहारिक                              | विश्लेषणात्मक एवं अनुभवजन्य                           | दार्शनिक एवं मानक (Normative)              |
| प्रमुख उद्देश्य  | शासन एवं निर्णय                         | राजनीतिक घटनाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण                 | आदर्श राजनीतिक व्यवस्था की खोज             |
| उदाहरण           | चुनाव अभियान,                           | मतदान व्यवहार का अध्ययन,                              | लोकतांत्रिक न्याय, सामाजिक                 |

|  |           |               |                              |
|--|-----------|---------------|------------------------------|
|  | सरकार गठन | नीति विश्लेषण | समानता, अधिकारों की व्याख्या |
|--|-----------|---------------|------------------------------|

## चिंतन एवं विमर्श

एक समाचार चैनल पर संसद में पारित किसी नए विधेयक पर चर्चा हो रही है। एक नेता उस विधेयक के पक्ष में राजनीतिक तर्क देता है, दूसरा नेता उसका विरोध करता है। उसी कार्यक्रम में एक संवैधानिक विशेषज्ञ उस विधेयक की संवैधानिक वैधता की व्याख्या करता है, जबकि एक दार्शनिक यह प्रश्न उठाता है कि क्या यह विधेयक न्याय, समानता और नागरिक स्वतंत्रता के सिद्धांतों के अनुरूप है।

विचार कीजिए कि इस चर्चा में कौन-सा पक्ष राजनीति का प्रतिनिधित्व करता है, कौन-सा राजनीतिक विज्ञान का, और कौन-सा राजनीतिक सिद्धांत का। क्या किसी लोकतांत्रिक समाज में इन तीनों दृष्टिकोणों की समान आवश्यकता है? यदि किसी एक दृष्टिकोण की उपेक्षा कर दी जाए, तो लोकतांत्रिक निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया किस प्रकार प्रभावित हो सकती है?

### 1.6 राजनीतिक विज्ञान का अन्य सामाजिक विज्ञानों से संबंध

मानव समाज बहुआयामी है। किसी व्यक्ति का जीवन केवल राजनीतिक घटनाओं से प्रभावित नहीं होता, बल्कि उसकी आर्थिक स्थिति, सामाजिक संरचना, ऐतिहासिक अनुभव, मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियाँ, सांस्कृतिक मान्यताएँ तथा प्रशासनिक व्यवस्थाएँ भी उसके व्यवहार को प्रभावित करती हैं। यही कारण है कि आधुनिक सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन अलग-अलग विषयों में विभाजित होने के बावजूद परस्पर गहराई से जुड़ा हुआ है।

राजनीतिक विज्ञान भी इस व्यापक सामाजिक ज्ञान-परंपरा का एक महत्वपूर्ण अंग है। यद्यपि इसका मुख्य अध्ययन विषय राज्य, सरकार, शक्ति तथा सार्वजनिक नीति है, फिर भी इन विषयों को अन्य सामाजिक विज्ञानों की सहायता के बिना पूरी तरह नहीं समझा जा सकता। उदाहरण के लिए, किसी चुनाव में मतदाताओं का व्यवहार केवल राजनीतिक विचारधारा से निर्धारित नहीं होता; उस पर जाति, वर्ग, शिक्षा, आय, मीडिया, स्थानीय संस्कृति तथा मनोवैज्ञानिक कारकों का भी प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार किसी सरकारी नीति की सफलता केवल उसके कानूनी प्रावधानों पर निर्भर नहीं करती, बल्कि उसके आर्थिक संसाधनों, प्रशासनिक क्षमता तथा सामाजिक स्वीकृति पर भी निर्भर करती है।

इसीलिए आधुनिक राजनीतिक विज्ञान को एक **अंतर्विषयक (Interdisciplinary)** विषय माना जाता है। इसका अर्थ यह है कि राजनीतिक विज्ञान अन्य सामाजिक विज्ञानों से निरंतर विचार, पद्धतियाँ और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण ग्रहण करता है तथा उन्हें अपने अध्ययन में समाहित करता है।

### राजनीतिक विज्ञान और इतिहास

इतिहास और राजनीतिक विज्ञान का संबंध अत्यंत घनिष्ठ तथा परस्पर पूरक है। यदि इतिहास अतीत की घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत करता है, तो राजनीतिक विज्ञान उन्हीं घटनाओं के राजनीतिक कारणों, परिणामों तथा समकालीन महत्व का विश्लेषण करता है। इस दृष्टि से कहा जाता है कि

**इतिहास राजनीतिक विज्ञान की प्रयोगशाला है**, जबकि राजनीतिक विज्ञान इतिहास की घटनाओं को समझने की विश्लेषणात्मक दृष्टि प्रदान करता है।

कोई भी राजनीतिक संस्था, संविधान या शासन व्यवस्था अचानक अस्तित्व में नहीं आती। उसके पीछे एक लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया कार्य करती है। भारतीय संविधान को समझने के लिए केवल उसके अनुच्छेदों का अध्ययन पर्याप्त नहीं है; उसके निर्माण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, स्वतंत्रता आंदोलन, संविधान सभा की बहसें तथा औपनिवेशिक शासन के अनुभवों को भी समझना आवश्यक है।

उदाहरण के लिए, भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों का समावेश केवल एक कानूनी निर्णय नहीं था। इसके पीछे ब्रिटिश शासन के दौरान नागरिक स्वतंत्रताओं पर लगाए गए प्रतिबंध, स्वतंत्रता आंदोलन के अनुभव तथा विश्व के लोकतांत्रिक संविधानों का प्रभाव था। इसी प्रकार संघीय शासन प्रणाली को अपनाने का निर्णय भारत की भौगोलिक, भाषाई और सांस्कृतिक विविधता के ऐतिहासिक अनुभवों से प्रेरित था।

इतिहास का अध्ययन हमें यह भी समझने में सहायता करता है कि लोकतंत्र, राष्ट्रवाद, समाजवाद, उपनिवेशवाद, मानवाधिकार तथा कल्याणकारी राज्य जैसी अवधारणाएँ किस प्रकार विकसित हुईं। यदि फ्रांसीसी क्रांति, अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम, रूसी क्रांति अथवा भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का अध्ययन न किया जाए, तो आधुनिक राजनीतिक विचारों की उत्पत्ति और विकास को समझना कठिन होगा।

दूसरी ओर, इतिहासकार भी राजनीतिक विज्ञान से सहायता प्राप्त करते हैं। जब वे किसी ऐतिहासिक घटना का अध्ययन करते हैं, तो राज्य, शक्ति, वैधता, शासन, नेतृत्व तथा सार्वजनिक नीति जैसी राजनीतिक अवधारणाएँ उनके विश्लेषण को अधिक वैज्ञानिक और तार्किक बनाती हैं।

फिर भी दोनों विषयों में अंतर है। इतिहास मुख्यतः **"क्या हुआ?"** का उत्तर देता है, जबकि राजनीतिक विज्ञान यह समझने का प्रयास करता है कि **"ऐसा क्यों हुआ?"**, **"उसके क्या परिणाम हुए?"** और **"भविष्य के लिए उससे क्या सीख प्राप्त होती है?"**

## **राजनीतिक विज्ञान और समाजशास्त्र**

यदि इतिहास हमें किसी समाज के अतीत से परिचित कराता है, तो समाजशास्त्र वर्तमान समाज की संरचना और उसके संबंधों को समझने में सहायता करता है। समाजशास्त्र परिवार, जाति, वर्ग, धर्म, समुदाय, संस्कृति, सामाजिक परिवर्तन तथा सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन करता है, जबकि राजनीतिक विज्ञान उन्हीं सामाजिक संरचनाओं के राजनीतिक प्रभावों का विश्लेषण करता है।

कोई भी राजनीतिक व्यवस्था समाज से अलग होकर कार्य नहीं कर सकती। नागरिक जिस सामाजिक वातावरण में रहते हैं, वही उनके राजनीतिक व्यवहार, मतदान की प्रवृत्तियों, नेतृत्व की पसंद तथा लोकतांत्रिक सहभागिता को प्रभावित करता है। इसलिए राजनीतिक विज्ञान के लिए समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण अत्यंत आवश्यक है।

भारत इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। यहाँ चुनावी राजनीति पर जाति, क्षेत्र, भाषा, धर्म, शिक्षा, नगरीकरण, आर्थिक स्थिति तथा सामाजिक आंदोलनों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यदि कोई शोधकर्ता केवल चुनाव परिणामों का अध्ययन करे और इन सामाजिक कारकों की उपेक्षा कर दे, तो उसका विश्लेषण अधूरा रहेगा।

उदाहरण के लिए, महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व में वृद्धि केवल संवैधानिक संशोधन का परिणाम नहीं है। इसके पीछे महिला शिक्षा, स्वयं सहायता समूहों (Self Help Groups), पंचायती राज संस्थाओं में आरक्षण, सामाजिक जागरूकता तथा नागरिक संगठनों की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही है। इसी प्रकार अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को समझने के लिए सामाजिक संरचना का अध्ययन अनिवार्य है।

समकालीन राजनीति में सामाजिक मीडिया भी एक नई सामाजिक संस्था के रूप में उभरा है। आज राजनीतिक विचारों का निर्माण केवल परिवार या विद्यालय में नहीं होता, बल्कि डिजिटल मंचों, ऑनलाइन समुदायों तथा सामाजिक नेटवर्कों के माध्यम से भी होता है। इसलिए आधुनिक राजनीतिक समाजशास्त्र डिजिटल समाज और राजनीतिक व्यवहार के बीच संबंधों का भी अध्ययन करता है।

इस प्रकार समाजशास्त्र राजनीतिक विज्ञान को समाज की संरचना समझने में सहायता देता है, जबकि राजनीतिक विज्ञान समाजशास्त्र को यह समझने में सहायता करता है कि सामाजिक परिवर्तन राजनीतिक संस्थाओं और सार्वजनिक नीतियों को किस प्रकार प्रभावित करते हैं।

## राजनीतिक विज्ञान और अर्थशास्त्र

राजनीति और अर्थव्यवस्था का संबंध आधुनिक युग में पहले की अपेक्षा कहीं अधिक गहरा हो गया है। किसी भी सरकार की सफलता केवल उसकी राजनीतिक स्थिरता पर निर्भर नहीं करती, बल्कि उसकी आर्थिक नीतियों पर भी निर्भर करती है। यदि किसी देश में महंगाई बढ़ती है, बेरोजगारी बढ़ती है, आर्थिक असमानता गहराती है अथवा विकास की गति धीमी पड़ जाती है, तो उसका सीधा प्रभाव राजनीतिक व्यवस्था पर पड़ता है।

इस कारण राजनीतिक विज्ञान और अर्थशास्त्र का संबंध अत्यंत घनिष्ठ है। अर्थशास्त्र उत्पादन, वितरण, उपभोग, आय, रोजगार, कराधान तथा आर्थिक संसाधनों का अध्ययन करता है, जबकि राजनीतिक विज्ञान यह विश्लेषण करता है कि इन आर्थिक संसाधनों के संबंध में निर्णय कौन लेता है, किन प्राथमिकताओं के आधार पर लेता है और उनका समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है।

उदाहरण के लिए, केंद्रीय बजट केवल आर्थिक दस्तावेज नहीं होता; वह सरकार की राजनीतिक प्राथमिकताओं का भी दर्पण होता है। यदि किसी बजट में शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, रक्षा, आधारभूत संरचना अथवा सामाजिक सुरक्षा पर व्यय बढ़ाया जाता है, तो यह केवल वित्तीय निर्णय नहीं बल्कि सार्वजनिक नीति और राजनीतिक प्राथमिकताओं का भी संकेत होता है।

भारत में **वस्तु एवं सेवा कर (GST)** लागू करना, **मनरेगा**, **प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT)**, **जन धन योजना**, **उज्ज्वला योजना**, **उत्पादन आधारित प्रोत्साहन (PLI)** तथा **आत्मनिर्भर भारत अभियान** जैसे कार्यक्रम राजनीति और अर्थव्यवस्था के गहरे संबंध को स्पष्ट करते हैं। इन योजनाओं का अध्ययन केवल आर्थिक दृष्टि से नहीं किया जा सकता; इनके सामाजिक और राजनीतिक प्रभावों का विश्लेषण भी आवश्यक है।

वैश्वीकरण के युग में यह संबंध और अधिक व्यापक हो गया है। अंतरराष्ट्रीय व्यापार, विदेशी निवेश, ऊर्जा सुरक्षा, खाद्य सुरक्षा तथा जलवायु वित्त जैसे विषय राष्ट्रीय राजनीति और वैश्विक अर्थव्यवस्था दोनों को समान रूप से प्रभावित करते हैं। इसलिए आधुनिक राजनीतिक विज्ञान में **राजनीतिक अर्थव्यवस्था (Political Economy)** एक स्वतंत्र अध्ययन क्षेत्र के रूप में विकसित हो चुकी है।

## राजनीतिक विज्ञान और मनोविज्ञान

राजनीतिक जीवन का केंद्र मनुष्य है और मनुष्य का व्यवहार केवल बाहरी परिस्थितियों से निर्धारित नहीं होता, बल्कि उसके विचारों, भावनाओं, विश्वासों, प्रेरणाओं तथा मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों से भी प्रभावित होता है। इसी कारण राजनीतिक विज्ञान और मनोविज्ञान के बीच अत्यंत घनिष्ठ संबंध पाया जाता है। जहाँ मनोविज्ञान व्यक्ति के मानसिक व्यवहार का अध्ययन करता है, वहीं राजनीतिक विज्ञान यह समझने का प्रयास करता है कि वही मानसिक प्रक्रियाएँ राजनीतिक व्यवहार को किस प्रकार प्रभावित करती हैं।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में नागरिकों द्वारा लिया गया प्रत्येक राजनीतिक निर्णय—चाहे वह मतदान करना हो, किसी राजनीतिक दल का समर्थन करना हो, किसी आंदोलन में भाग लेना हो अथवा किसी सार्वजनिक नीति का विरोध करना हो—किसी न किसी स्तर पर मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं से प्रभावित होता है। व्यक्ति का आत्मविश्वास, सामाजिक पहचान, नेतृत्व के प्रति विश्वास, भविष्य की अपेक्षाएँ, सुरक्षा की भावना तथा परिवर्तन के प्रति उसका दृष्टिकोण राजनीतिक निर्णयों को प्रभावित करते हैं।

उदाहरण के लिए, चुनावों के दौरान मतदाता केवल चुनाव घोषणापत्र पढ़कर निर्णय नहीं लेते। अनेक बार किसी नेता का व्यक्तित्व, उसकी विश्वसनीयता, संवाद शैली, संकट के समय उसका नेतृत्व, मीडिया में उसकी छवि तथा जनता के साथ उसका भावनात्मक जुड़ाव मतदान व्यवहार को प्रभावित करता है। इसी कारण आधुनिक चुनाव अभियानों में राजनीतिक दल जनसंपर्क, जनभावनाओं के अध्ययन, मतदाता सर्वेक्षण तथा राजनीतिक संचार पर विशेष ध्यान देते हैं।

कोविड-19 महामारी के दौरान यह संबंध स्पष्ट रूप से दिखाई दिया। सरकारों को केवल स्वास्थ्य संबंधी निर्णय नहीं लेने थे, बल्कि नागरिकों में विश्वास बनाए रखना, अफवाहों को रोकना, टीकाकरण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना तथा सार्वजनिक सहयोग सुनिश्चित करना भी आवश्यक था। यदि नागरिकों में विश्वास की कमी होती, तो वैज्ञानिक रूप से प्रभावी नीतियाँ भी अपेक्षित परिणाम नहीं दे पातीं। इससे स्पष्ट होता है कि सफल सार्वजनिक नीति के लिए मनोवैज्ञानिक पहलुओं को समझना भी आवश्यक है।

राजनीतिक नेतृत्व का अध्ययन भी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया जाता है। यह विश्लेषण किया जाता है कि संकट की परिस्थितियों में कुछ नेता प्रभावी निर्णय क्यों ले पाते हैं, जबकि कुछ असफल हो जाते हैं। नेतृत्व क्षमता, निर्णय लेने का आत्मविश्वास, संवाद कौशल, सहानुभूति तथा भावनात्मक बुद्धिमत्ता (Emotional Intelligence) जैसे गुण राजनीतिक नेतृत्व की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

आधुनिक समय में सोशल मीडिया ने राजनीतिक मनोविज्ञान के अध्ययन को और अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। डिजिटल मंचों पर सूचनाओं का तीव्र प्रसार, भावनात्मक अपील, दृश्य सामग्री, कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित सुझाव (Algorithmic Recommendations) तथा भ्रामक सूचनाओं (Misinformation) का प्रभाव नागरिकों की राजनीतिक धारणाओं को प्रभावित करता है। इसलिए राजनीतिक मनोविज्ञान आज लोकतंत्र, चुनाव, राजनीतिक संचार और जनमत निर्माण के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बन चुका है।

फिर भी दोनों विषयों में अंतर स्पष्ट है। मनोविज्ञान मुख्यतः व्यक्ति के मानसिक व्यवहार का अध्ययन करता है, जबकि राजनीतिक विज्ञान उन मानसिक प्रवृत्तियों के राजनीतिक परिणामों का विश्लेषण

करता है। दूसरे शब्दों में, मनोविज्ञान व्यक्ति को समझता है और राजनीतिक विज्ञान समाज में उस व्यक्ति के राजनीतिक व्यवहार को।

## राजनीतिक विज्ञान और लोक प्रशासन

राज्य की नीतियाँ तभी सफल मानी जाती हैं जब वे प्रभावी ढंग से नागरिकों तक पहुँचें। यदि सरकार उत्कृष्ट कानून और योजनाएँ बनाए, परंतु उनका क्रियान्वयन प्रभावी न हो, तो उनका उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। यही वह क्षेत्र है जहाँ राजनीतिक विज्ञान और लोक प्रशासन का घनिष्ठ संबंध दिखाई देता है।

राजनीतिक विज्ञान शासन की संरचना, सार्वजनिक नीति, लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व तथा राजनीतिक निर्णयों का अध्ययन करता है, जबकि लोक प्रशासन उन निर्णयों के व्यावहारिक क्रियान्वयन का अध्ययन करता है। इस प्रकार दोनों विषय एक ही शासन प्रक्रिया के दो परस्पर पूरक पक्ष हैं।

उदाहरण के लिए, संसद यदि **राष्ट्रीय शिक्षा नीति** को स्वीकार करती है, तो यह राजनीतिक निर्णय है। किन्तु विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, शिक्षकों, पाठ्यक्रमों, प्रशिक्षण कार्यक्रमों तथा प्रशासनिक तंत्र के माध्यम से उस नीति को लागू करना लोक प्रशासन का कार्य है। इसी प्रकार यदि सरकार स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार करने का निर्णय लेती है, तो अस्पतालों की स्थापना, चिकित्सकों की नियुक्ति, दवाओं की उपलब्धता तथा सेवा वितरण की व्यवस्था प्रशासनिक प्रक्रिया के अंतर्गत आती है।

भारत में डिजिटल शासन (Digital Governance) ने इस संबंध को और अधिक स्पष्ट किया है। आधार, डिजिलॉकर, कोविन (CoWIN), जन धन योजना, प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT), ऑनलाइन सेवा पोर्टल तथा डिजिटल भुगतान प्रणाली केवल तकनीकी परियोजनाएँ नहीं हैं; वे राजनीतिक निर्णय और प्रशासनिक दक्षता के समन्वय का परिणाम हैं।

लोक प्रशासन का अध्ययन राजनीतिक विज्ञान को यह समझने में सहायता करता है कि सार्वजनिक नीतियों का वास्तविक प्रभाव नागरिकों तक किस प्रकार पहुँचता है। दूसरी ओर, राजनीतिक विज्ञान लोक प्रशासन को लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व, संवैधानिक सीमाओं तथा सार्वजनिक हित की दिशा प्रदान करता है।

यही कारण है कि आधुनिक शासन में **Good Governance (सुशासन)** की अवधारणा विकसित हुई, जिसमें पारदर्शिता, उत्तरदायित्व, दक्षता, सहभागिता, विधि का शासन तथा नागरिक-केंद्रित प्रशासन को समान महत्त्व दिया जाता है।

## राजनीतिक विज्ञान और विधिशास्त्र (LAW)

राज्य, कानून और न्याय एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। कोई भी राजनीतिक व्यवस्था विधिक आधार के बिना स्थायी नहीं रह सकती। इसी प्रकार कानून भी राजनीतिक व्यवस्था से पृथक नहीं हो सकता क्योंकि कानून का निर्माण, संशोधन तथा क्रियान्वयन राजनीतिक संस्थाओं के माध्यम से ही होता है।

विधिशास्त्र (Law) का संबंध कानूनों की प्रकृति, व्याख्या तथा न्यायिक प्रक्रिया से है, जबकि राजनीतिक विज्ञान यह अध्ययन करता है कि कानून बनाने वाली संस्थाएँ कैसे कार्य करती हैं, कानूनों का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा कानून और लोकतंत्र के बीच क्या संबंध है।

भारतीय संसद द्वारा पारित प्रत्येक कानून राजनीतिक प्रक्रिया का परिणाम होता है। संसद में विधेयक प्रस्तुत किया जाता है, उस पर बहस होती है, संसदीय समितियाँ उसका परीक्षण करती हैं, दोनों सदनों से पारित होने के बाद राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त होती है और अंततः वह कानून बनता है। इस पूरी प्रक्रिया का अध्ययन राजनीतिक विज्ञान करता है, जबकि उस कानून की न्यायिक व्याख्या, संवैधानिक वैधता तथा विधिक सिद्धांतों का अध्ययन विधिशास्त्र करता है।

उदाहरण के लिए, **सूचना का अधिकार अधिनियम, शिक्षा का अधिकार अधिनियम, डेटा संरक्षण अधिनियम, महिला आरक्षण अधिनियम** अथवा **पर्यावरण संरक्षण कानून** केवल कानूनी दस्तावेज नहीं हैं; वे लोकतांत्रिक राजनीति, सार्वजनिक नीति और संवैधानिक मूल्यों का भी परिणाम हैं।

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय भी राजनीतिक विज्ञान के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं। **मौलिक संरचना सिद्धांत (Basic Structure Doctrine), गोपनीयता का अधिकार, पर्यावरणीय न्याय, निर्वाचन सुधार** तथा **मौलिक अधिकारों** से संबंधित निर्णय लोकतांत्रिक शासन की दिशा को प्रभावित करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि कानून और राजनीति परस्पर निर्भर हैं।

## राजनीतिक विज्ञान और भूगोल

राजनीतिक संस्थाओं का विकास केवल विचारों से नहीं होता; प्राकृतिक परिस्थितियाँ भी शासन की संरचना और राजनीतिक निर्णयों को प्रभावित करती हैं। किसी देश का आकार, जलवायु, प्राकृतिक संसाधन, सीमाएँ, समुद्री स्थिति, पर्वतीय क्षेत्र, नदियाँ तथा जनसंख्या का वितरण उसकी राजनीति को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। इसलिए राजनीतिक विज्ञान और भूगोल के बीच भी घनिष्ठ संबंध है।

भारत का संघीय ढाँचा उसकी विशाल भौगोलिक विविधता से प्रभावित है। हिमालयी राज्यों की प्रशासनिक आवश्यकताएँ तटीय राज्यों से भिन्न हैं। पूर्वोत्तर भारत की भौगोलिक स्थिति विशेष सुरक्षा एवं संपर्क नीतियों की माँग करती है, जबकि मरुस्थलीय क्षेत्रों में जल संसाधन और आधारभूत संरचना प्रमुख राजनीतिक प्रश्न बन जाते हैं।

जलवायु परिवर्तन ने भूगोल और राजनीति के संबंध को और अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। समुद्र स्तर में वृद्धि, जल संकट, बाढ़, सूखा तथा पर्यावरणीय आपदाएँ अब केवल प्राकृतिक घटनाएँ नहीं रह गई हैं; वे सार्वजनिक नीति, आर्थिक विकास, राष्ट्रीय सुरक्षा तथा अंतरराष्ट्रीय सहयोग के विषय भी बन चुकी हैं।

उदाहरण के लिए, गंगा और ब्रह्मपुत्र जैसी अंतरराष्ट्रीय नदियों के जल बँटवारे से संबंधित समझौते केवल पर्यावरणीय विषय नहीं हैं, बल्कि विदेश नीति, अंतरराष्ट्रीय कानून और राष्ट्रीय हित से भी जुड़े हुए हैं। इसी प्रकार आर्कटिक क्षेत्र, हिंद महासागर तथा ऊर्जा संसाधनों से जुड़े प्रश्न आधुनिक भू-राजनीति (Geopolitics) के प्रमुख अध्ययन क्षेत्र बन चुके हैं।

## समग्र विश्लेषण : अंतर्विषयक राजनीतिक विज्ञान

इक्कीसवीं शताब्दी का राजनीतिक विज्ञान किसी एक विषय की सीमाओं में बँधा हुआ नहीं है। आधुनिक शासन, लोकतंत्र और सार्वजनिक नीति को समझने के लिए इतिहास की पृष्ठभूमि, समाजशास्त्र की

सामाजिक संरचना, अर्थशास्त्र के संसाधन, मनोविज्ञान के व्यवहार, विधिशास्त्र के कानूनी सिद्धांत, लोक प्रशासन की क्रियान्वयन क्षमता तथा भूगोल की भौतिक परिस्थितियों—इन सभी का समन्वित अध्ययन आवश्यक है।

यही कारण है कि आज विश्व के प्रमुख विश्वविद्यालयों में राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन **Public Policy, Governance, Political Economy, Political Psychology, Political Sociology, Constitutional Studies, International Relations, Data Analytics, Environmental Politics** तथा **Artificial Intelligence and Governance** जैसे अंतर्विषयक क्षेत्रों के साथ किया जाता है।

राजनीतिक विज्ञान की वास्तविक शक्ति इसी अंतर्विषयक दृष्टिकोण में निहित है। यह केवल राज्य का अध्ययन नहीं करता, बल्कि मनुष्य, समाज और शासन के बीच विद्यमान जटिल संबंधों को समग्रता से समझने का प्रयास करता है। इसी कारण आधुनिक राजनीतिक विज्ञान को सामाजिक विज्ञानों का एक समन्वयकारी (Integrative) एवं गतिशील अनुशासन माना जाता है।

### 1.7 समकालीन परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक विज्ञान

राजनीतिक विज्ञान का स्वरूप समय के साथ निरंतर परिवर्तित होता रहा है। यदि प्राचीन काल में इसका केंद्र राज्य और शासन था, मध्यकाल में धर्म और सत्ता का संबंध प्रमुख था, आधुनिक काल में लोकतंत्र, अधिकार और संविधान पर बल दिया गया, तो समकालीन युग में राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन और भी व्यापक हो गया है। आज राजनीति केवल संसद, विधानसभाओं या चुनावों तक सीमित नहीं है; यह डिजिटल प्रौद्योगिकी, वैश्विक अर्थव्यवस्था, पर्यावरण, स्वास्थ्य, मानवाधिकार और कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसे विषयों से भी गहराई से जुड़ चुकी है।

इक्कीसवीं शताब्दी को प्रायः वैश्वीकरण और डिजिटल युग का काल कहा जाता है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी ने राज्य और नागरिकों के संबंधों को बदल दिया है। अब सरकारें केवल पारंपरिक प्रशासनिक माध्यमों से नहीं, बल्कि डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से भी नागरिकों तक पहुँचती हैं। भारत में डिजिटल इंडिया, आधार, यूनिकाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI), दिगिलॉकर, कोविन (CoWIN) तथा विभिन्न ऑनलाइन सेवा पोर्टलों ने शासन को अधिक सुलभ और पारदर्शी बनाने का प्रयास किया है। इन पहलों का अध्ययन केवल प्रशासनिक दृष्टि से नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक सहभागिता, डेटा गोपनीयता, डिजिटल अधिकार तथा राज्य की भूमिका के संदर्भ में भी किया जाता है।

समकालीन राजनीतिक विज्ञान का एक महत्वपूर्ण अध्ययन क्षेत्र डिजिटल लोकतंत्र (Digital Democracy) है। सोशल मीडिया, ऑनलाइन अभियान, डिजिटल जनमत तथा इंटरनेट आधारित राजनीतिक संचार ने चुनावी राजनीति को गहराई से प्रभावित किया है। आज राजनीतिक दल मतदाताओं तक पहुँचने के लिए डिजिटल मंचों का व्यापक उपयोग करते हैं। नागरिक भी अपनी राय व्यक्त करने, सरकार की आलोचना करने तथा सामाजिक आंदोलनों में भाग लेने के लिए ऑनलाइन माध्यमों का उपयोग करते हैं। इससे लोकतांत्रिक सहभागिता के नए अवसर उत्पन्न हुए हैं, किन्तु साथ ही भ्रामक सूचनाओं (Misinformation), फेक न्यूज़, घृणा भाषण तथा डिजिटल ध्रुवीकरण जैसी चुनौतियाँ भी सामने आई हैं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) ने राजनीतिक विज्ञान के सामने नए प्रश्न खड़े किए हैं। यदि सरकारी निर्णयों, कल्याणकारी योजनाओं, निगरानी प्रणालियों अथवा न्यायिक प्रक्रियाओं में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग किया जाए, तो पारदर्शिता, जवाबदेही और नागरिक अधिकारों की रक्षा कैसे सुनिश्चित की जाएगी? उदाहरण के लिए, यदि किसी एल्गोरिदम के आधार पर सरकारी लाभार्थियों का

चयन किया जाता है, तो यह आवश्यक है कि उस प्रक्रिया में भेदभाव न हो और नागरिकों को अपील का अवसर उपलब्ध हो। इसलिए AI और शासन (AI and Governance) आज राजनीतिक विज्ञान का उभरता हुआ अध्ययन क्षेत्र है।

जलवायु परिवर्तन (Climate Change) भी समकालीन राजनीति का केंद्रीय विषय बन चुका है। बाढ़, सूखा, गर्मी की लहरें, समुद्र स्तर में वृद्धि तथा पर्यावरणीय संकट अब केवल वैज्ञानिक मुद्दे नहीं हैं; वे सार्वजनिक नीति, आर्थिक विकास, राष्ट्रीय सुरक्षा और अंतरराष्ट्रीय सहयोग से जुड़े प्रश्न बन चुके हैं। भारत द्वारा अंतरराष्ट्रीय सौर गठबंधन (International Solar Alliance) की पहल, नवीकरणीय ऊर्जा के विस्तार तथा सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) के प्रति प्रतिबद्धता को इसी संदर्भ में समझा जा सकता है।

समकालीन राजनीतिक विज्ञान में मानवाधिकार और सामाजिक न्याय का अध्ययन भी विशेष महत्त्व रखता है। लैंगिक समानता, बाल अधिकार, दिव्यांगजन अधिकार, अनुसूचित जाति एवं जनजाति अधिकार, LGBTQ+ समुदाय के अधिकार तथा सामाजिक समावेशन से जुड़े प्रश्न लोकतांत्रिक राजनीति के केंद्र में आ चुके हैं। उदाहरण के लिए, महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को बढ़ाने के लिए किए गए संवैधानिक प्रयास केवल चुनावी सुधार नहीं हैं; वे सामाजिक न्याय और समान अवसर के व्यापक लोकतांत्रिक लक्ष्य से जुड़े हुए हैं।

कोविड-19 महामारी ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि आधुनिक राजनीति में वैश्विक स्वास्थ्य शासन (Global Health Governance) कितना महत्वपूर्ण है। महामारी के दौरान सरकारों को लॉकडाउन, टीकाकरण, आर्थिक राहत, प्रवासी श्रमिकों की सहायता, डिजिटल शिक्षा तथा अंतरराष्ट्रीय सहयोग जैसे अनेक निर्णय लेने पड़े। इससे यह सिद्ध हुआ कि सार्वजनिक स्वास्थ्य, अर्थव्यवस्था और राजनीति परस्पर गहराई से जुड़े हुए हैं।

आज का राजनीतिक विज्ञान इसलिए विशिष्ट है क्योंकि यह केवल सत्ता के पारंपरिक अध्ययन तक सीमित नहीं है। यह यह समझने का प्रयास करता है कि तकनीक, पर्यावरण, वैश्विक संस्थाएँ, सामाजिक आंदोलन, डिजिटल नेटवर्क, न्यायपालिका, नागरिक समाज और अंतरराष्ट्रीय सहयोग मिलकर शासन की प्रकृति को किस प्रकार बदल रहे हैं। इस दृष्टि से समकालीन राजनीतिक विज्ञान एक गतिशील, अंतर्विषयक और समस्या-समाधान उन्मुख विषय के रूप में विकसित हो चुका है।

## 1.8 अध्याय सारांश (Chapter Summary)

इस अध्याय में राजनीतिक विज्ञान की अवधारणा, ऐतिहासिक विकास, प्रकृति तथा अध्ययन क्षेत्र का विस्तृत अध्ययन किया गया। प्रारम्भ में यह स्पष्ट किया गया कि राजनीतिक विज्ञान केवल राज्य या सरकार का अध्ययन नहीं है, बल्कि शक्ति, शासन, सार्वजनिक नीति, नागरिक अधिकारों और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं का समग्र अध्ययन है।

अध्याय में राजनीतिक विज्ञान की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण करते हुए अरस्तू, गार्नर, ब्लंटशली, लासवेल और डेविड ईस्टन जैसे विद्वानों के योगदान को समझाया गया। इससे यह स्पष्ट हुआ कि राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र समय के साथ राज्य-केंद्रित दृष्टिकोण से आगे बढ़कर शक्ति, नीति और नागरिक सहभागिता तक विस्तृत हुआ।

राजनीतिक विज्ञान के ऐतिहासिक विकास के अध्ययन से ज्ञात हुआ कि प्राचीन काल में आदर्श राज्य की खोज, मध्यकाल में धर्म और सत्ता का संबंध, आधुनिक काल में अधिकार और लोकतंत्र का उदय तथा समकालीन युग में वैश्वीकरण और डिजिटल शासन जैसे विषय प्रमुख रहे हैं।

राजनीतिक विज्ञान की प्रकृति के विश्लेषण में यह निष्कर्ष सामने आया कि यह न तो पूर्णतः प्राकृतिक विज्ञान है और न ही केवल कला; बल्कि यह एक सामाजिक विज्ञान है जो वैज्ञानिक पद्धतियों के साथ-साथ मानवीय मूल्यों और सामाजिक संदर्भों को भी महत्व देता है।

अध्ययन क्षेत्र के अंतर्गत राज्य, सरकार, संविधान, शक्ति, लोकतंत्र, सार्वजनिक नीति, अंतरराष्ट्रीय राजनीति तथा उभरते हुए क्षेत्रों—जैसे डिजिटल लोकतंत्र, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और जलवायु शासन—का अध्ययन शामिल किया गया। साथ ही राजनीति, राजनीतिक विज्ञान और राजनीतिक सिद्धांत के बीच अंतर स्पष्ट किया गया।

अंत में यह भी समझाया गया कि राजनीतिक विज्ञान इतिहास, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, लोक प्रशासन, विधिशास्त्र और भूगोल जैसे अन्य सामाजिक विज्ञानों से गहराई से जुड़ा हुआ है। इसी अंतर्विषयक दृष्टिकोण के कारण आधुनिक राजनीतिक विज्ञान मानव समाज और शासन के जटिल संबंधों को समग्र रूप से समझने में सक्षम बनता है।

## 1.9 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

### (क) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. राजनीतिक विज्ञान के जनक किसे कहा जाता है? (क) प्लेटो (ख) अरस्तू (ग) लॉक (घ) रूसो
2. “Who Gets What, When and How?” कथन किस विद्वान का है? (क) डेविड ईस्टन (ख) गार्नर (ग) लासवेल (घ) ब्लंटशली
3. “Authoritative Allocation of Values” की अवधारणा किसने दी? (क) अरस्तू (ख) ईस्टन (ग) हॉब्स (घ) मार्क्स
4. निम्नलिखित में से कौन राजनीतिक विज्ञान का समकालीन अध्ययन क्षेत्र है? (क) डिजिटल लोकतंत्र (ख) AI और शासन (ग) जलवायु राजनीति (घ) उपर्युक्त सभी
5. राजनीतिक विज्ञान और समाजशास्त्र का संबंध मुख्यतः किससे जुड़ा है? (क) सामाजिक संरचना (ख) रासायनिक परिवर्तन (ग) खगोल विज्ञान (घ) जीव विज्ञान

### (ख) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions)

1. राजनीतिक विज्ञान का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. अरस्तू के राजनीतिक विचारों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
3. राजनीतिक विज्ञान की प्रकृति को सामाजिक विज्ञान क्यों कहा जाता है?
4. राजनीति और राजनीतिक विज्ञान में अंतर स्पष्ट कीजिए।
5. राजनीतिक विज्ञान और इतिहास के संबंध को समझाइए।
6. डिजिटल लोकतंत्र से आप क्या समझते हैं?

### (ग) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Questions)

1. राजनीतिक विज्ञान के ऐतिहासिक विकास का विस्तृत विवेचन कीजिए।
2. राजनीतिक विज्ञान की प्रकृति का समालोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।
3. राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र का विस्तृत वर्णन कीजिए।
4. राजनीति, राजनीतिक विज्ञान और राजनीतिक सिद्धांत का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।
5. राजनीतिक विज्ञान का अन्य सामाजिक विज्ञानों से संबंध स्पष्ट कीजिए।

### (घ) विश्लेषणात्मक प्रश्न (Analytical Questions)

1. क्या राजनीतिक विज्ञान को प्राकृतिक विज्ञान की तरह पूर्ण विज्ञान माना जा सकता है? उदाहरण सहित विश्लेषण कीजिए।
2. सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म ने राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र को किस प्रकार बदल दिया है?
3. क्या आधुनिक लोकतंत्र को समझने के लिए केवल संविधान का अध्ययन पर्याप्त है? समाजशास्त्र और मनोविज्ञान की भूमिका के संदर्भ में स्पष्ट कीजिए।
4. सार्वजनिक नीति के अध्ययन में राजनीतिक विज्ञान और अर्थशास्त्र की संयुक्त भूमिका का विश्लेषण कीजिए।
5. कृत्रिम बुद्धिमत्ता के बढ़ते उपयोग के संदर्भ में राजनीतिक विज्ञान के सामने उत्पन्न नई चुनौतियों पर चर्चा कीजिए।

### 1.10 संदर्भ ग्रंथ (Suggested Readings – APA Style)

- Appadorai, A. (2017). The substance of politics. Oxford University Press.
- Easton, D. (1965). A systems analysis of political life. Wiley.
- Garner, J. W. (2013). Political science and government. Surjeet Publications.
- Heywood, A. (2021). Politics (5th ed.). Red Globe Press.
- Lasswell, H. D. (1936). Politics: Who gets what, when, how. McGraw-Hill.
- O. P. Gauba. (2022). An introduction to political theory (7th ed.). Mayur Paperbacks.
- Sabine, G. H., & Thorson, T. L. (1973). A history of political theory (4th ed.). Dryden Press.
- Sharma, B. M. (2021). राजनीति विज्ञान के सिद्धांत. College Book Depot.
- Verma, S. P. (2020). आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत. Vikas Publishing House.
- Vishnoo Bhagwan, & Vidya Bhushan. (2021). लोक प्रशासन एवं राजनीति विज्ञान. S. Chand Publishing.

## अध्याय-2

### राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन की पद्धतियाँ एवं उपागम

#### अधिगम उद्देश्य (LEARNING OBJECTIVES)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी—

- राजनीतिक विज्ञान में अध्ययन पद्धति (Method) एवं उपागम (Approach) की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- परम्परागत एवं आधुनिक अध्ययन उपागमों के विकास तथा उनके महत्त्व का विश्लेषण कर सकेंगे।
- व्यवहारवादी (Behavioural) एवं उत्तर-व्यवहारवादी (Post-Behavioural) उपागमों की विशेषताओं, सीमाओं तथा समकालीन प्रासंगिकता का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- विभिन्न अध्ययन पद्धतियों की उपयोगिता का आलोचनात्मक परीक्षण करते हुए समकालीन राजनीतिक घटनाओं के अध्ययन में उनका अनुप्रयोग समझ सकेंगे।

## भूमिका (Introduction)

राजनीतिक विज्ञान केवल राज्य, सरकार अथवा राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन भर नहीं है, बल्कि यह एक ऐसा सामाजिक विज्ञान है जो मानव के राजनीतिक व्यवहार, सत्ता के वितरण, सार्वजनिक नीतियों, लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं तथा शासन की बदलती प्रकृति का व्यवस्थित विश्लेषण करता है। किसी भी विषय के अध्ययन में यह जितना महत्वपूर्ण है कि *क्या* अध्ययन किया जाए, उतना ही आवश्यक यह भी है कि *कैसे* अध्ययन किया जाए। यही प्रश्न अध्ययन पद्धतियों (Methods) और अध्ययन उपागमों (Approaches) को जन्म देता है।

प्रारम्भिक राजनीतिक चिंतन मुख्यतः दार्शनिक, नैतिक और आदर्शवादी था। प्लेटो ने आदर्श राज्य की कल्पना प्रस्तुत की, अरस्तू ने शासन व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया, जबकि मध्यकालीन विचारकों ने धर्म और राजनीति के संबंध पर विशेष बल दिया। आधुनिक युग में संविधान, कानून और राज्य की संस्थाओं का अध्ययन प्रमुख हो गया। इन सभी अध्ययनों में राजनीतिक जीवन के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण तो किया गया, किन्तु सामान्यतः ध्यान इस बात पर अधिक था कि **राज्य कैसा होना चाहिए**, न कि इस पर कि **राजनीतिक व्यवहार वास्तव में कैसा है**।

बीसवीं शताब्दी में विश्व राजनीति में व्यापक परिवर्तन हुए। दो विश्वयुद्धों, लोकतंत्र के विस्तार, उपनिवेशवाद के अंत, औद्योगीकरण, संचार क्रांति तथा सामाजिक विज्ञानों में अनुसंधान पद्धतियों के विकास ने राजनीतिक विज्ञान के सामने नई चुनौतियाँ प्रस्तुत कीं। विद्वानों ने अनुभव किया कि केवल संवैधानिक प्रावधानों, दार्शनिक आदर्शों अथवा संस्थागत संरचनाओं का अध्ययन वास्तविक राजनीतिक जीवन को समझने के लिए पर्याप्त नहीं है। संविधान में जो लिखा है और व्यवहार में जो घटित होता है, दोनों में अनेक बार उल्लेखनीय अंतर दिखाई देता है।

उदाहरण के लिए, अनेक देशों के संविधान नागरिकों को समान अधिकार प्रदान करते हैं, किन्तु व्यवहार में सामाजिक असमानताएँ, आर्थिक विषमताएँ, राजनीतिक प्रभाव, क्षेत्रीय असंतुलन अथवा प्रशासनिक कमियाँ नागरिकों के अनुभवों को अलग-अलग बना देती हैं। इसी प्रकार लोकतांत्रिक व्यवस्था में सभी नागरिकों को मतदान का अधिकार प्राप्त होता है, परन्तु सभी नागरिक समान रूप से मतदान नहीं करते। कुछ क्षेत्रों में मतदान प्रतिशत बहुत अधिक होता है, जबकि कुछ स्थानों पर अपेक्षाकृत कम। केवल संवैधानिक प्रावधानों के अध्ययन से इस अंतर को नहीं समझा जा सकता; इसके लिए नागरिकों के वास्तविक व्यवहार, उनकी प्रेरणाओं, सामाजिक परिस्थितियों तथा मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों का अध्ययन आवश्यक होता है।

भारत में यह स्थिति अनेक उदाहरणों से स्पष्ट होती है। संविधान सभी नागरिकों को समान राजनीतिक अधिकार देता है, परन्तु विभिन्न राज्यों में मतदान प्रतिशत, महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी, युवाओं की राजनीतिक सक्रियता तथा स्थानीय मुद्दों का प्रभाव अलग-अलग दिखाई देता है। कुछ क्षेत्रों में विकास, रोजगार और शिक्षा चुनावी मुद्दे बनते हैं, जबकि अन्य क्षेत्रों में जल संकट, कृषि, क्षेत्रीय पहचान या स्थानीय प्रशासन अधिक महत्वपूर्ण विषय होते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि राजनीतिक वास्तविकताओं को समझने के लिए केवल औपचारिक संस्थाओं का अध्ययन पर्याप्त नहीं है।

इसी आवश्यकता ने राजनीतिक विज्ञान में अध्ययन की नई पद्धतियों और उपागमों को जन्म दिया। राजनीतिक वैज्ञानिकों ने समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, मानवशास्त्र तथा सांख्यिकी जैसे विषयों की अनुसंधान तकनीकों का उपयोग करना प्रारम्भ किया। सर्वेक्षण (Survey), प्रश्नावली (Questionnaire), साक्षात्कार (Interview), सहभागितापूर्ण अवलोकन (Participant Observation), सांख्यिकीय विश्लेषण (Statistical Analysis), नमूना चयन (Sampling) तथा व्यवहार अध्ययन जैसी विधियाँ राजनीतिक अनुसंधान का अभिन्न भाग बनने लगीं। इसके परिणामस्वरूप राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन अधिक अनुभवजन्य (Empirical), वस्तुनिष्ठ (Objective) तथा प्रमाण-आधारित (Evidence-based) होता गया।

यद्यपि इन आधुनिक उपागमों ने राजनीतिक विज्ञान को नई दिशा प्रदान की, फिर भी परम्परागत अध्ययन पद्धतियों का महत्व समाप्त नहीं हुआ। इतिहास हमें राजनीतिक संस्थाओं के विकास को समझने में सहायता देता है; दर्शन राजनीतिक मूल्यों की व्याख्या करता है; विधिक अध्ययन संविधान और संस्थाओं की संरचना को स्पष्ट करता है; जबकि व्यवहारवादी दृष्टिकोण वास्तविक राजनीतिक व्यवहार का विश्लेषण करता है। आधुनिक राजनीतिक अनुसंधान इन सभी दृष्टिकोणों का संतुलित उपयोग करता है।

आज जब लोकतंत्र डिजिटल तकनीक, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, सोशल मीडिया, बिग डेटा और वैश्विक संचार से प्रभावित हो रहा है, तब राजनीतिक विज्ञान की अध्ययन पद्धतियाँ भी निरंतर विकसित हो रही हैं। चुनावी रुझानों का विश्लेषण करने के लिए डेटा एनालिटिक्स का उपयोग किया जा रहा है, जनमत को समझने के लिए ऑनलाइन सर्वेक्षण किए जा रहे हैं तथा सार्वजनिक नीति के प्रभाव का मूल्यांकन कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित विश्लेषणों के माध्यम से भी किया जाने लगा है। इससे स्पष्ट होता है कि अध्ययन पद्धतियाँ केवल अनुसंधान की तकनीक नहीं हैं; वे राजनीतिक विज्ञान की बदलती प्रकृति और उसके विकास का भी दर्पण हैं।

इसी पृष्ठभूमि में इस अध्याय में राजनीतिक विज्ञान की प्रमुख अध्ययन पद्धतियों एवं उपागमों का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाएगा। पहले अध्ययन पद्धति और उपागम की अवधारणाओं को स्पष्ट किया जाएगा, तत्पश्चात् परम्परागत तथा आधुनिक उपागमों का विश्लेषण किया जाएगा। विशेष रूप से व्यवहारवादी और उत्तर-व्यवहारवादी उपागमों का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा, क्योंकि इन्होंने आधुनिक राजनीतिक विज्ञान के स्वरूप और अनुसंधान पद्धति को गहराई से प्रभावित किया है।

## **2.1 राजनीतिक विज्ञान के प्रमुख अध्ययन उपागम : परम्परागत एवं आधुनिक दृष्टिकोण**

राजनीतिक विज्ञान का विकास एक सतत बौद्धिक प्रक्रिया का परिणाम है। समय, समाज और राजनीतिक परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ इसके अध्ययन की पद्धतियों और उपागमों में भी परिवर्तन हुआ है। जिस प्रकार किसी समाज की राजनीतिक समस्याएँ बदलती हैं, उसी प्रकार उन्हें समझने के लिए अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण भी विकसित होते हैं। यही कारण है कि राजनीतिक विज्ञान का

इतिहास केवल राजनीतिक विचारों का इतिहास नहीं है, बल्कि अध्ययन उपागमों के विकास का इतिहास भी है।

सामान्यतः राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन उपागमों को दो व्यापक वर्गों में विभाजित किया जाता है— **परम्परागत (Traditional Approaches)** और **आधुनिक (Modern Approaches)**। यह विभाजन समय के आधार पर नहीं, बल्कि अध्ययन की प्रकृति, उद्देश्य तथा अनुसंधान शैली के आधार पर किया जाता है। दोनों की अपनी-अपनी विशेषताएँ, सीमाएँ और उपयोगिता है। आधुनिक राजनीतिक विज्ञान इन दोनों परंपराओं के समन्वय से विकसित हुआ है।

## परम्परागत उपागम : आदर्शों और संस्थाओं पर आधारित अध्ययन

राजनीतिक विज्ञान के प्रारम्भिक विकास में अध्ययन का मुख्य केंद्र **राज्य, सरकार, संविधान, कानून तथा आदर्श शासन व्यवस्था** थे। उस समय विद्वानों का उद्देश्य यह समझना था कि राज्य का स्वरूप कैसा होना चाहिए, शासन का सर्वोत्तम रूप कौन-सा है, नागरिकों के अधिकार एवं कर्तव्य क्या होने चाहिए तथा न्यायपूर्ण समाज की स्थापना किस प्रकार संभव है।

इस दृष्टिकोण में राजनीतिक घटनाओं की अपेक्षा राजनीतिक आदर्शों को अधिक महत्त्व दिया जाता था। अध्ययन मुख्यतः ग्रंथों, ऐतिहासिक घटनाओं, संवैधानिक प्रावधानों तथा दार्शनिक विचारों पर आधारित था। अनुभवजन्य अनुसंधान (Empirical Research) या सांख्यिकीय विश्लेषण का प्रयोग अपेक्षाकृत कम किया जाता था।

प्लेटो ने अपने ग्रंथ *The Republic* में आदर्श राज्य की कल्पना प्रस्तुत की। अरस्तू ने विभिन्न शासन व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया और उन्हें श्रेष्ठ तथा विकृत रूपों में वर्गीकृत किया। मध्यकाल में संत थॉमस एक्विनास ने धर्म और राज्य के संबंधों का विश्लेषण किया, जबकि आधुनिक युग में हॉब्स, लॉक और रूसो ने सामाजिक अनुबंध तथा राज्य की वैधता पर विचार प्रस्तुत किए। इन सभी विचारकों के अध्ययन में आदर्श व्यवस्था, नैतिकता और राजनीतिक दर्शन प्रमुख थे।

परम्परागत उपागम का सबसे बड़ा योगदान यह है कि इसने राजनीतिक विज्ञान को बौद्धिक और दार्शनिक आधार प्रदान किया। लोकतंत्र, न्याय, स्वतंत्रता, समानता, अधिकार, नागरिकता तथा विधि के शासन जैसी अवधारणाएँ इसी परंपरा के माध्यम से विकसित हुईं। आज भी संविधान की व्याख्या, मानवाधिकारों की चर्चा, लोकतांत्रिक मूल्यों का विश्लेषण तथा राजनीतिक दर्शन का अध्ययन मुख्यतः इसी दृष्टिकोण पर आधारित है।

फिर भी इस उपागम की कुछ सीमाएँ थीं। यह वास्तविक राजनीतिक व्यवहार की अपेक्षा आदर्श राजनीतिक व्यवस्था पर अधिक केंद्रित था। उदाहरण के लिए, यदि संविधान में सभी नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त हैं, तो परम्परागत उपागम मुख्यतः उन अधिकारों की संवैधानिक व्याख्या करेगा; लेकिन व्यवहार में वे अधिकार सभी नागरिकों तक समान रूप से पहुँच रहे हैं या नहीं, इसका उत्तर वह पर्याप्त रूप से नहीं दे पाता।

## आधुनिक उपागम : वास्तविक राजनीतिक व्यवहार की ओर

बीसवीं शताब्दी के मध्य तक यह अनुभव किया जाने लगा कि केवल संवैधानिक संस्थाओं और राजनीतिक दर्शन के अध्ययन से राजनीति की वास्तविक प्रकृति को पूरी तरह नहीं समझा जा सकता। लोकतंत्र का विस्तार हो चुका था, मताधिकार सार्वभौमिक हो चुका था, राजनीतिक दलों और दबाव समूहों की भूमिका बढ़ रही थी तथा नागरिकों का राजनीतिक व्यवहार अनेक सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक कारकों से प्रभावित होने लगा था।

इसी पृष्ठभूमि में आधुनिक उपागमों का विकास हुआ। इनका उद्देश्य यह जानना था कि **राजनीतिक संस्थाएँ व्यवहार में कैसे कार्य करती हैं, लोग वास्तव में कैसे मतदान करते हैं, जनमत कैसे बनता है, राजनीतिक नेतृत्व कैसे विकसित होता है, तथा सार्वजनिक नीतियों का समाज पर वास्तविक प्रभाव क्या होता है।**

आधुनिक उपागमों ने राजनीतिक विज्ञान को अधिक **वैज्ञानिक, अनुभवजन्य (Empirical), वस्तुनिष्ठ (Objective)** तथा **अनुसंधान-आधारित** बनाया। इन उपागमों में समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, मानवशास्त्र तथा सांख्यिकी की अनुसंधान तकनीकों का व्यापक उपयोग किया गया। सर्वेक्षण, साक्षात्कार, प्रश्नावली, मतदान अध्ययन, सांख्यिकीय विश्लेषण तथा क्षेत्रीय अनुसंधान (Field Research) राजनीतिक अध्ययन के महत्वपूर्ण उपकरण बन गए।

यदि किसी निर्वाचन क्षेत्र में मतदान प्रतिशत कम होता है, तो आधुनिक उपागम केवल संवैधानिक अधिकारों की चर्चा नहीं करेगा, बल्कि यह जानने का प्रयास करेगा कि क्या इसके पीछे शिक्षा का स्तर, रोजगार की स्थिति, शहरीकरण, राजनीतिक जागरूकता, सोशल मीडिया, उम्मीदवार की छवि अथवा स्थानीय समस्याएँ जिम्मेदार हैं। इस प्रकार आधुनिक उपागम राजनीति को उसके वास्तविक सामाजिक संदर्भ में समझने का प्रयास करता है।

भारत में निर्वाचन आयोग द्वारा प्रकाशित मतदान आँकड़े, विभिन्न संस्थाओं द्वारा किए गए चुनावोत्तर सर्वेक्षण (Post-Poll Surveys), जनमत सर्वेक्षण तथा सार्वजनिक नीति के प्रभाव संबंधी अध्ययन आधुनिक अनुसंधान पद्धतियों के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उदाहरण के लिए, यदि किसी राज्य में महिला मतदाताओं की भागीदारी पुरुषों से अधिक पाई जाती है, तो राजनीतिक वैज्ञानिक केवल इस तथ्य को दर्ज नहीं करता, बल्कि उसके पीछे कार्य कर रहे सामाजिक, आर्थिक और नीतिगत कारणों का भी विश्लेषण करता है।

## परम्परागत और आधुनिक उपागम : विरोध नहीं, विकास की निरंतरता

कई बार यह माना जाता है कि आधुनिक उपागमों के विकास के बाद परम्परागत दृष्टिकोण अप्रासंगिक हो गए। यह धारणा उचित नहीं है। वास्तव में आधुनिक उपागमों ने परम्परागत दृष्टिकोण का स्थान नहीं लिया, बल्कि उसकी सीमाओं को दूर करते हुए उसे अधिक व्यापक बनाया।

यदि किसी देश में निर्वाचन सुधारों का अध्ययन किया जा रहा है, तो संविधान और कानून की जानकारी प्राप्त करने के लिए संस्थागत एवं विधिक दृष्टिकोण आवश्यक होगा। चुनावों के ऐतिहासिक विकास को समझने के लिए ऐतिहासिक उपागम उपयोगी होगा। मतदाताओं के व्यवहार का अध्ययन करने के लिए

व्यवहारवादी उपागम आवश्यक होगा, जबकि यह मूल्यांकन करने के लिए कि चुनावी सुधार लोकतांत्रिक न्याय और समानता के आदर्शों को कितना मजबूत करते हैं, दार्शनिक अथवा मानक दृष्टिकोण की आवश्यकता होगी।

इस प्रकार आधुनिक राजनीतिक अनुसंधान किसी एक उपागम पर निर्भर नहीं रहता। वह विभिन्न उपागमों का समन्वय करके अधिक विश्वसनीय और संतुलित निष्कर्ष प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि समकालीन राजनीतिक विज्ञान में **बहु-विषयी (Interdisciplinary)** तथा **बहु-पद्धतिगत (Multi-method)** अनुसंधान को विशेष महत्त्व दिया जाता है।

आगे के अनुभागों में परम्परागत अध्ययन पद्धतियों का संक्षिप्त परिचय दिया जाएगा और उसके पश्चात व्यवहारवादी उपागम का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा, जिसने आधुनिक राजनीतिक विज्ञान की दिशा और अनुसंधान पद्धति में क्रांतिकारी परिवर्तन उत्पन्न किया।

## 2.2 परम्परागत अध्ययन पद्धतियाँ (Traditional Methods of the Study of Political Science)

राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन का प्रारम्भ दार्शनिक चिंतन से हुआ था। लंबे समय तक राजनीतिक विचारकों का मुख्य उद्देश्य आदर्श राज्य, न्यायपूर्ण शासन और श्रेष्ठ राजनीतिक व्यवस्था की खोज करना था। परिणामस्वरूप प्रारम्भिक राजनीतिक अध्ययन मुख्यतः दार्शनिक, ऐतिहासिक तथा संस्थागत आधारों पर विकसित हुआ। इन अध्ययन विधियों को सामूहिक रूप से **परम्परागत अध्ययन पद्धतियाँ (Traditional Methods)** कहा जाता है।

परम्परागत पद्धतियों की विशेषता यह है कि इनमें राजनीतिक संस्थाओं, संवैधानिक व्यवस्थाओं, ऐतिहासिक घटनाओं तथा राजनीतिक विचारों का गुणात्मक (Qualitative) विश्लेषण किया जाता है। इनका उद्देश्य राजनीतिक जीवन के मूल सिद्धांतों, संस्थागत विकास तथा आदर्श राजनीतिक व्यवस्था को समझना होता है। यद्यपि इन पद्धतियों में आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों का सीमित प्रयोग मिलता है, फिर भी इन्होंने राजनीतिक विज्ञान को सुदृढ़ बौद्धिक आधार प्रदान किया।

आधुनिक राजनीतिक विज्ञान की अनेक अवधारणाएँ—जैसे लोकतंत्र, न्याय, समानता, स्वतंत्रता, नागरिकता तथा विधि का शासन—इन्हीं परम्परागत अध्ययन पद्धतियों की देन हैं। आज भी संविधान, राजनीतिक दर्शन तथा शासन संस्थाओं के अध्ययन में इनका महत्त्व बना हुआ है।

राजनीतिक विज्ञान में परम्परागत अध्ययन पद्धतियों को सामान्यतः चार प्रमुख भागों में विभाजित किया जाता है—

- ऐतिहासिक पद्धति (Historical Method)
- दार्शनिक पद्धति (Philosophical Method)
- कानूनी अथवा संस्थागत पद्धति (Legal/Institutional Method)
- तुलनात्मक पद्धति (Comparative Method)

### ऐतिहासिक पद्धति (HISTORICAL METHOD)

ऐतिहासिक पद्धति राजनीतिक विज्ञान की सबसे प्राचीन तथा सर्वाधिक प्रभावशाली अध्ययन पद्धतियों में से एक है। इसका आधार यह विचार है कि वर्तमान राजनीतिक संस्थाओं, नीतियों और व्यवस्थाओं को समझने के लिए उनके ऐतिहासिक विकास का अध्ययन आवश्यक है। कोई भी राजनीतिक संस्था अचानक अस्तित्व में नहीं आती; वह सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के दीर्घकालीन विकास का परिणाम होती है।

इस पद्धति में राजनीतिक घटनाओं को उनके समय, परिस्थितियों तथा विकासक्रम के संदर्भ में समझा जाता है। इतिहास केवल घटनाओं का विवरण प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि यह भी स्पष्ट करता है कि उन घटनाओं के पीछे कौन-से कारण कार्य कर रहे थे और उनके दूरगामी परिणाम क्या हुए।

भारतीय संविधान इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। संविधान के संघीय ढाँचे, संसदीय शासन प्रणाली, मौलिक अधिकारों तथा नीति-निर्देशक सिद्धांतों को समझने के लिए भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन, ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था, संविधान सभा की बहसों तथा विश्व के विभिन्न संविधानों के प्रभाव का अध्ययन करना आवश्यक है। यदि इन ऐतिहासिक परिस्थितियों की उपेक्षा कर दी जाए, तो संविधान की अनेक व्यवस्थाओं का वास्तविक उद्देश्य स्पष्ट नहीं हो पाएगा।

इसी प्रकार पंचायती राज संस्थाओं का वर्तमान स्वरूप समझने के लिए केवल 73वें संविधान संशोधन का अध्ययन पर्याप्त नहीं है। इसके पीछे भारत की ग्राम स्वशासन परंपरा, बलवंतराय मेहता समिति, अशोक मेहता समिति तथा विकेंद्रीकरण की ऐतिहासिक प्रक्रिया का अध्ययन भी आवश्यक है।

अंतरराष्ट्रीय राजनीति में भी ऐतिहासिक दृष्टिकोण अत्यंत उपयोगी सिद्ध होता है। संयुक्त राष्ट्र संगठन की स्थापना को समझने के लिए द्वितीय विश्वयुद्ध, राष्ट्र संघ की असफलता तथा वैश्विक शांति की आवश्यकता का अध्ययन अनिवार्य है। इसी प्रकार भारत-चीन संबंधों को समझने के लिए 1962 के युद्ध, सीमा विवाद तथा उसके बाद के कूटनीतिक विकास का अध्ययन आवश्यक है।

ऐतिहासिक पद्धति का प्रमुख गुण यह है कि यह राजनीतिक संस्थाओं की उत्पत्ति और विकास को क्रमबद्ध रूप से स्पष्ट करती है। इससे वर्तमान राजनीतिक समस्याओं की जड़ तक पहुँचने में सहायता मिलती है तथा भविष्य की नीतियों के निर्माण में भी उपयोगी मार्गदर्शन प्राप्त होता है।

फिर भी इस पद्धति की कुछ सीमाएँ हैं। कई बार इतिहासकार एक ही घटना की अलग-अलग व्याख्या प्रस्तुत करते हैं, जिससे पूर्ण वस्तुनिष्ठता बनाए रखना कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त केवल अतीत के आधार पर वर्तमान राजनीतिक व्यवहार की व्याख्या हमेशा संभव नहीं होती, क्योंकि समाज और राजनीतिक परिस्थितियाँ निरंतर बदलती रहती हैं।

## दार्शनिक पद्धति (PHILOSOPHICAL METHOD)

राजनीतिक विज्ञान का प्रारम्भ दार्शनिक चिंतन से हुआ। प्लेटो, अरस्तू, हॉब्स, लॉक, रूसो, हेगेल, ग्रीन तथा महात्मा गांधी जैसे विचारकों ने राजनीति का अध्ययन केवल इस आधार पर नहीं किया कि राज्य वास्तव में कैसा है, बल्कि इस आधार पर किया कि **राज्य कैसा होना चाहिए**। यही दार्शनिक पद्धति की मूल विशेषता है।

इस पद्धति का उद्देश्य राजनीतिक जीवन के नैतिक, आदर्शवादी और मूल्यपरक पक्षों का अध्ययन करना है। इसमें न्याय, स्वतंत्रता, समानता, अधिकार, कर्तव्य, नैतिकता तथा आदर्श शासन जैसी अवधारणाओं का विश्लेषण किया जाता है। इसलिए इसे **मानक (Normative)** अध्ययन पद्धति भी कहा जाता है।

उदाहरण के लिए, यदि यह प्रश्न पूछा जाए कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की सीमा क्या होनी चाहिए, तो इसका उत्तर केवल संविधान पढ़कर नहीं दिया जा सकता। इसके लिए यह भी विचार करना होगा कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक उत्तरदायित्व के बीच संतुलन कैसे स्थापित किया जाए। यही कार्य दार्शनिक पद्धति करती है।

महात्मा गांधी का **रामराज्य**, जॉन रॉल्स का **न्याय का सिद्धांत (Theory of Justice)** तथा अमर्त्य सेन का **क्षमता दृष्टिकोण (Capability Approach)** इसी प्रकार के मूल्यपरक राजनीतिक चिंतन के उदाहरण हैं। आज भी जब सरकारें कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डेटा गोपनीयता या जैव-प्रौद्योगिकी से संबंधित नीतियाँ बनाती हैं, तब केवल तकनीकी या कानूनी प्रश्न पर्याप्त नहीं होते; नैतिक और दार्शनिक प्रश्न भी उतने ही महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

दार्शनिक पद्धति राजनीतिक विज्ञान को केवल तथ्यों का अध्ययन करने वाला विषय नहीं रहने देती, बल्कि उसे मानवीय मूल्यों से भी जोड़ती है। लोकतंत्र, मानवाधिकार और सामाजिक न्याय जैसी अवधारणाओं की वास्तविक समझ इसी दृष्टिकोण से विकसित होती है।

किन्तु इसकी सीमा यह है कि विभिन्न विचारकों के आदर्श अलग-अलग हो सकते हैं। जो व्यवस्था एक विचारक के अनुसार न्यायपूर्ण है, वही दूसरे के अनुसार अनुचित भी हो सकती है। इसलिए इस पद्धति में पूर्ण सहमति प्राप्त करना कठिन होता है।

## **कानूनी अथवा संस्थागत पद्धति (LEGAL OR INSTITUTIONAL METHOD)**

राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन में कानूनी अथवा संस्थागत पद्धति का विशेष स्थान है। आधुनिक राज्य का संचालन संविधान, कानूनों तथा विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं के माध्यम से होता है। इसलिए किसी भी राजनीतिक व्यवस्था को समझने के लिए उसकी संवैधानिक संरचना, विधिक आधार तथा शासन संस्थाओं का अध्ययन आवश्यक होता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति कानूनी अथवा संस्थागत पद्धति करती है।

इस पद्धति का विकास विशेष रूप से उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ, जब राजनीतिक विज्ञान का प्रमुख केंद्र राज्य, सरकार तथा संवैधानिक संस्थाएँ थीं। उस समय अधिकांश विद्वानों का विश्वास था कि किसी देश की राजनीतिक व्यवस्था को समझने के लिए उसके संविधान, विधिक प्रावधानों तथा संस्थागत संरचना का अध्ययन पर्याप्त है। इसलिए राजनीतिक विज्ञान को कई बार **संविधानों का विज्ञान (Science of Constitutions)** भी कहा गया।

इस पद्धति में संसद, कार्यपालिका, न्यायपालिका, निर्वाचन आयोग, राजनीतिक दल, स्थानीय स्वशासन संस्थाएँ तथा अन्य संवैधानिक निकायों का अध्ययन किया जाता है। साथ ही यह भी देखा जाता है कि इन

संस्थाओं की शक्तियाँ क्या हैं, उनका गठन किस प्रकार होता है, वे किस प्रकार कार्य करती हैं तथा उनके बीच शक्तियों का विभाजन कैसे किया गया है।

भारतीय संविधान इस पद्धति के अध्ययन का सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है। संसद की विधायी शक्तियाँ, राष्ट्रपति के अधिकार, प्रधानमंत्री एवं मंत्रिपरिषद की भूमिका, सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक समीक्षा की शक्ति, निर्वाचन आयोग की स्वतंत्रता तथा नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) की संवैधानिक स्थिति—इन सभी का अध्ययन मुख्यतः कानूनी अथवा संस्थागत दृष्टिकोण से किया जाता है।

उदाहरण के लिए, यदि संसद कोई नया कानून पारित करती है, तो इस पद्धति के अंतर्गत यह अध्ययन किया जाएगा कि विधेयक संसद में किस प्रकार प्रस्तुत किया गया, दोनों सदनों में उसकी प्रक्रिया क्या रही, राष्ट्रपति की स्वीकृति किस प्रकार प्राप्त हुई तथा वह संविधान के किस अनुच्छेद के अंतर्गत बनाया गया। यदि बाद में सर्वोच्च न्यायालय उस कानून की संवैधानिक वैधता की समीक्षा करता है, तो उसका अध्ययन भी इसी दृष्टिकोण से किया जाएगा।

इसी प्रकार पंचायती राज संस्थाओं को समझने के लिए केवल ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का अध्ययन पर्याप्त नहीं है। यह जानना भी आवश्यक है कि 73वें संविधान संशोधन द्वारा ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद को कौन-कौन सी संवैधानिक शक्तियाँ प्रदान की गईं, महिलाओं एवं अनुसूचित जाति-जनजाति के लिए आरक्षण की व्यवस्था क्यों की गई तथा राज्य वित्त आयोग और राज्य निर्वाचन आयोग की भूमिका क्या है।

समकालीन संदर्भ में भी इस पद्धति का महत्त्व कम नहीं हुआ है। **सूचना का अधिकार अधिनियम (RTI), डिजिटल व्यक्तिगत डेटा संरक्षण अधिनियम (Digital Personal Data Protection Act), महिला आरक्षण अधिनियम, लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम, पर्यावरण संरक्षण अधिनियम तथा शिक्षा का अधिकार अधिनियम** जैसे कानूनों का अध्ययन इसी पद्धति के माध्यम से किया जाता है। इससे यह समझने में सहायता मिलती है कि लोकतांत्रिक शासन केवल राजनीतिक इच्छाशक्ति पर नहीं, बल्कि सुदृढ़ कानूनी संस्थाओं पर भी आधारित होता है।

कानूनी अथवा संस्थागत पद्धति का सबसे बड़ा गुण यह है कि यह शासन व्यवस्था की औपचारिक संरचना को स्पष्ट रूप से समझाती है। इसके माध्यम से संविधान, कानून, अधिकार, शक्तियों का विभाजन तथा विभिन्न संस्थाओं के परस्पर संबंधों का व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त होता है। सार्वजनिक प्रशासन, संवैधानिक कानून तथा शासन प्रणाली के अध्ययन में यह पद्धति आज भी अत्यंत उपयोगी मानी जाती है।

फिर भी इसकी कुछ सीमाएँ हैं। यह पद्धति मुख्यतः **संस्थाओं के औपचारिक स्वरूप** का अध्ययन करती है, जबकि व्यवहार में संस्थाएँ कई बार संविधान में वर्णित ढंग से कार्य नहीं करतीं। उदाहरण के लिए, संविधान संसद को सर्वोच्च विधायी संस्था मानता है, किन्तु व्यवहार में राजनीतिक दलों का अनुशासन, गठबंधन राजनीति, मीडिया का प्रभाव, दबाव समूह तथा जनमत भी विधायी प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। इसी प्रकार संविधान सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान करता है, किन्तु उन अधिकारों का वास्तविक उपयोग सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों पर भी निर्भर करता है। इसलिए केवल कानूनी अध्ययन से राजनीतिक वास्तविकताओं की पूर्ण व्याख्या संभव नहीं हो पाती।

## तुलनात्मक पद्धति (COMPARATIVE METHOD)

राजनीतिक विज्ञान में तुलनात्मक पद्धति का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इस पद्धति का आधार यह विचार है कि किसी राजनीतिक संस्था, शासन व्यवस्था अथवा नीति को बेहतर ढंग से समझने के लिए उसकी तुलना अन्य देशों या व्यवस्थाओं से की जानी चाहिए। तुलना के माध्यम से समानताओं और भिन्नताओं का विश्लेषण किया जाता है, जिससे किसी व्यवस्था की विशेषताओं, शक्तियों तथा सीमाओं का अधिक वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन संभव हो पाता है।

तुलनात्मक अध्ययन की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। अरस्तू ने लगभग 158 यूनानी नगर-राज्यों के संविधानों का अध्ययन करके शासन व्यवस्थाओं का वर्गीकरण किया था। इसी कारण उन्हें तुलनात्मक राजनीति का अग्रदूत माना जाता है। आधुनिक काल में यह पद्धति और अधिक वैज्ञानिक हो गई तथा राजनीतिक अनुसंधान का एक स्वतंत्र क्षेत्र **तुलनात्मक राजनीति (Comparative Politics)** के रूप में विकसित हुआ।

इस पद्धति में दो या दो से अधिक देशों, राज्यों, संस्थाओं या राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना की जाती है। तुलना केवल संवैधानिक प्रावधानों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि राजनीतिक संस्कृति, चुनावी व्यवहार, प्रशासनिक दक्षता, सार्वजनिक नीति, नागरिक सहभागिता तथा आर्थिक-सामाजिक परिस्थितियों को भी ध्यान में रखा जाता है।

उदाहरण के लिए, भारत और ब्रिटेन दोनों में संसदीय शासन प्रणाली है, किन्तु दोनों देशों की संवैधानिक संरचना में महत्वपूर्ण अंतर है। ब्रिटेन का संविधान अलिखित (Unwritten) है, जबकि भारत का संविधान विश्व का सबसे विस्तृत लिखित संविधान है। ब्रिटेन में संसद की सर्वोच्चता का सिद्धांत लागू है, जबकि भारत में संविधान सर्वोच्च है और न्यायपालिका को न्यायिक समीक्षा (Judicial Review) का अधिकार प्राप्त है। इन अंतरों को समझने के लिए तुलनात्मक पद्धति अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है।

इसी प्रकार भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका दोनों लोकतांत्रिक देश हैं, परंतु भारत ने संसदीय शासन प्रणाली अपनाई है, जबकि अमेरिका में राष्ट्रपति शासन प्रणाली है। यदि कोई विद्यार्थी केवल भारतीय संविधान का अध्ययन करे, तो उसे यह ज्ञात नहीं होगा कि राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री की शक्तियों में मूलभूत अंतर क्यों है। तुलनात्मक अध्ययन इस अंतर को स्पष्ट करता है।

समकालीन राजनीति में भी तुलनात्मक पद्धति का महत्व निरंतर बढ़ रहा है। विभिन्न देशों की शिक्षा नीतियों, स्वास्थ्य प्रणालियों, चुनाव सुधारों, डिजिटल शासन, पर्यावरण संरक्षण तथा सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करके सरकारें एक-दूसरे के सफल अनुभवों से सीखती हैं। उदाहरण के लिए, भारत की डिजिटल भुगतान प्रणाली (UPI) का अध्ययन आज अनेक देशों द्वारा किया जा रहा है, जबकि भारत ने भी कई क्षेत्रों में अन्य देशों के प्रशासनिक अनुभवों से प्रेरणा प्राप्त की है।

कोविड-19 महामारी के दौरान विभिन्न देशों की स्वास्थ्य नीतियों, लॉकडाउन रणनीतियों, टीकाकरण कार्यक्रमों तथा सार्वजनिक संचार प्रणालियों की तुलना करके यह समझने का प्रयास किया गया कि किन नीतियों ने अधिक प्रभावी परिणाम दिए। इसी प्रकार जलवायु परिवर्तन, ऊर्जा सुरक्षा तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता के नियमन के क्षेत्र में भी तुलनात्मक अध्ययन नीति-निर्माण का महत्वपूर्ण आधार बन चुका है।

तुलनात्मक पद्धति का प्रमुख गुण यह है कि यह राजनीतिक अध्ययन को अधिक व्यापक, वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक बनाती है। इससे केवल किसी एक देश की राजनीतिक व्यवस्था को नहीं, बल्कि वैश्विक संदर्भ में उसकी स्थिति और विशिष्टताओं को भी समझा जा सकता है। यही कारण है कि आधुनिक राजनीतिक विज्ञान में तुलनात्मक अध्ययन को अनुसंधान की सबसे प्रभावी पद्धतियों में से एक माना जाता है।

फिर भी इस पद्धति की अपनी सीमाएँ हैं। विभिन्न देशों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सामाजिक संरचना, संस्कृति, आर्थिक विकास तथा राजनीतिक परंपराएँ भिन्न होती हैं। इसलिए किसी देश की सफल नीति को बिना आवश्यक संशोधन के दूसरे देश में लागू नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, स्कैंडिनेवियाई देशों की सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था या स्विट्ज़रलैंड की प्रत्यक्ष लोकतंत्र प्रणाली को उसी रूप में भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश में लागू करना व्यावहारिक नहीं होगा। अतः तुलनात्मक अध्ययन करते समय प्रत्येक देश की विशिष्ट परिस्थितियों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

परम्परागत अध्ययन पद्धतियों ने राजनीतिक विज्ञान को वैचारिक गहराई, ऐतिहासिक आधार, संवैधानिक समझ और तुलनात्मक दृष्टि प्रदान की। किन्तु बीसवीं शताब्दी के मध्य में यह अनुभव किया गया कि केवल संस्थाओं, कानूनों और आदर्शों का अध्ययन राजनीति की वास्तविक प्रकृति को समझने के लिए पर्याप्त नहीं है। नागरिक वास्तव में कैसे व्यवहार करते हैं, राजनीतिक निर्णय किन कारकों से प्रभावित होते हैं, और राजनीतिक प्रक्रियाएँ व्यवहार में किस प्रकार संचालित होती हैं—इन प्रश्नों के उत्तर खोजने के प्रयास ने राजनीतिक विज्ञान में एक नए बौद्धिक परिवर्तन को जन्म दिया, जिसे **व्यवहारवादी क्रांति (Behavioural Revolution)** कहा जाता है। अगले अनुभाग में इसी आधुनिक उपागम का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा।

## 2.3 व्यवहारवादी उपागम (Behavioural Approach)

बीसवीं शताब्दी के मध्य में राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया, जिसने इस विषय की प्रकृति, अध्ययन क्षेत्र तथा अनुसंधान पद्धति को नई दिशा प्रदान की। इस परिवर्तन को **व्यवहारवादी क्रांति (Behavioural Revolution)** कहा जाता है। इस क्रांति का परिणाम था **व्यवहारवादी उपागम (Behavioural Approach)**, जिसने राजनीतिक विज्ञान का ध्यान केवल राज्य, संविधान और संस्थाओं से हटाकर **मनुष्य के वास्तविक राजनीतिक व्यवहार** की ओर केंद्रित किया।

व्यवहारवादी उपागम का मूल विश्वास यह था कि राजनीति का वास्तविक स्वरूप केवल संविधान की धाराओं या सरकारी संस्थाओं में नहीं, बल्कि उन नागरिकों, नेताओं, मतदाताओं, नौकरशाहों, राजनीतिक दलों तथा हित समूहों के व्यवहार में निहित है, जो इन संस्थाओं को संचालित करते हैं। इसलिए राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन वास्तविक तथ्यों (Facts), अनुभव (Experience) तथा प्रमाण (Evidence) के आधार पर किया जाना चाहिए।

इस उपागम ने राजनीतिक विज्ञान को अधिक **वैज्ञानिक (Scientific)**, **अनुभवजन्य (Empirical)**, **वस्तुनिष्ठ (Objective)** तथा **अनुसंधान-आधारित (Research Oriented)** बनाने का प्रयास किया। यही कारण है कि अनेक विद्वान व्यवहारवाद को आधुनिक राजनीतिक विज्ञान का सबसे प्रभावशाली बौद्धिक आंदोलन मानते हैं।

## व्यवहारवादी उपागम की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

व्यवहारवादी उपागम का विकास अचानक नहीं हुआ। इसके पीछे लगभग पाँच दशकों तक चलने वाला बौद्धिक परिवर्तन कार्य कर रहा था। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन मुख्यतः दार्शनिक, ऐतिहासिक तथा संवैधानिक दृष्टिकोणों पर आधारित

था। विद्वानों का अधिकांश ध्यान इस बात पर केंद्रित था कि राज्य की संरचना कैसी है, संविधान क्या कहता है और आदर्श शासन व्यवस्था कैसी होनी चाहिए।

किन्तु औद्योगिक क्रांति, लोकतंत्र के विस्तार, सार्वभौमिक मताधिकार, राजनीतिक दलों की बढ़ती भूमिका, श्रमिक आंदोलनों, जनसंचार माध्यमों तथा सामाजिक विज्ञानों में वैज्ञानिक अनुसंधान के विकास ने यह स्पष्ट कर दिया कि वास्तविक राजनीति को केवल संवैधानिक प्रावधानों के आधार पर नहीं समझा जा सकता।

प्रथम विश्वयुद्ध और विशेष रूप से द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व राजनीति में व्यापक परिवर्तन हुए। अनेक नए राष्ट्र स्वतंत्र हुए, लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं का विस्तार हुआ तथा नागरिकों की राजनीतिक भागीदारी बढ़ी। इन परिस्थितियों में राजनीतिक वैज्ञानिकों के सामने नए प्रश्न उत्पन्न हुए—

- लोग मतदान क्यों करते हैं?
- वे किसी विशेष राजनीतिक दल का समर्थन क्यों करते हैं?
- जनमत का निर्माण कैसे होता है?
- नेतृत्व के प्रति विश्वास कैसे विकसित होता है?
- राजनीतिक निर्णयों पर मीडिया, शिक्षा और आर्थिक स्थिति का क्या प्रभाव पड़ता है?

इन प्रश्नों के उत्तर केवल संविधान पढ़कर नहीं दिए जा सकते थे। इनके लिए वास्तविक समाज में जाकर लोगों के व्यवहार का अध्ययन करना आवश्यक था।

इसी समय समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, मानवशास्त्र तथा सांख्यिकी जैसे विषयों में वैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियों का तीव्र विकास हुआ। राजनीतिक वैज्ञानिकों ने इन विषयों से प्रेरणा लेकर सर्वेक्षण, प्रश्नावली, साक्षात्कार, सांख्यिकीय विश्लेषण तथा क्षेत्रीय अध्ययन जैसी अनुसंधान तकनीकों का प्रयोग प्रारम्भ किया। यही व्यवहारवादी आंदोलन की वास्तविक शुरुआत थी।

## व्यवहारवादी आंदोलन का विकास

व्यवहारवादी आंदोलन का सबसे महत्वपूर्ण केंद्र **संयुक्त राज्य अमेरिका** था। विशेष रूप से **शिकागो विश्वविद्यालय (University of Chicago)** ने इस आंदोलन को विकसित करने में अग्रणी भूमिका निभाई। यहाँ के विद्वानों ने राजनीतिक विज्ञान को केवल दार्शनिक चिंतन तक सीमित रखने के स्थान पर सामाजिक विज्ञानों की वैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियों से जोड़ने का प्रयास किया।

इस आंदोलन के प्रमुख प्रवर्तक **चार्ल्स ई. मेरियम (Charles E. Merriam)** माने जाते हैं। मेरियम का मत था कि राजनीतिक विज्ञान को वास्तविक जीवन की समस्याओं से जोड़ना चाहिए तथा राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन अनुभवजन्य तथ्यों के आधार पर किया जाना चाहिए। उन्होंने राजनीतिक अनुसंधान में मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा सांख्यिकी के प्रयोग को प्रोत्साहित किया।

मेरियम के विचारों को आगे बढ़ाने में **हैरोल्ड डी. लासवेल (Harold D. Lasswell)** का विशेष योगदान रहा। उन्होंने राजनीति को शक्ति के वितरण की प्रक्रिया के रूप में समझाया और प्रसिद्ध कथन दिया—

**"Politics is who gets what, when and how."**

अर्थात् राजनीति यह निर्धारित करती है कि समाज में **कौन, क्या, कब और किस प्रकार प्राप्त करेगा।**

लासवेल ने राजनीतिक नेतृत्व, प्रचार (Propaganda), जनमत तथा राजनीतिक मनोविज्ञान के अध्ययन को नई दिशा प्रदान की। उनके कार्यों से स्पष्ट हुआ कि राजनीति केवल संस्थाओं का अध्ययन नहीं, बल्कि मानव व्यवहार का भी अध्ययन है।

इसके पश्चात **डेविड ईस्टन (David Easton)** ने व्यवहारवादी आंदोलन को सैद्धांतिक आधार प्रदान किया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि राजनीतिक विज्ञान को अनुभवजन्य तथ्यों पर आधारित वैज्ञानिक अनुशासन बनना चाहिए। ईस्टन ने व्यवहारवाद के प्रमुख सिद्धांतों को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया और राजनीतिक व्यवस्था (Political System) की अवधारणा विकसित की।

इसी प्रकार **गेब्रियल आल्मंड (Gabriel Almond)** ने तुलनात्मक राजनीति में व्यवहारवादी दृष्टिकोण को विकसित किया तथा विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन नई पद्धतियों से किया। **रॉबर्ट डाहल (Robert Dahl)** ने लोकतंत्र, बहुलवाद (Pluralism) तथा शक्ति संरचना के अध्ययन में व्यवहारवादी दृष्टिकोण का प्रभावी उपयोग किया।

इन विद्वानों के प्रयासों से 1950 और 1960 के दशक तक व्यवहारवादी उपागम राजनीतिक विज्ञान की प्रमुख अध्ययन पद्धति बन गया। उस समय अनेक विद्वानों ने इसे राजनीतिक विज्ञान की **वैज्ञानिक क्रांति (Scientific Revolution)** की संज्ञा दी।

## व्यवहारवादी उपागम का अर्थ

व्यवहारवादी उपागम का मूल उद्देश्य राजनीतिक व्यवहार का **वैज्ञानिक, वस्तुनिष्ठ तथा अनुभवजन्य अध्ययन** करना है। इसमें राजनीतिक संस्थाओं की अपेक्षा उन व्यक्तियों और समूहों के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है जो इन संस्थाओं को संचालित करते हैं।

व्यवहारवादी विद्वानों के अनुसार यदि यह जानना हो कि लोकतंत्र वास्तव में कैसे कार्य करता है, तो केवल संविधान का अध्ययन पर्याप्त नहीं होगा। यह जानना भी आवश्यक होगा कि नागरिक मतदान क्यों करते हैं, वे किस आधार पर अपने प्रतिनिधि चुनते हैं, राजनीतिक दल जनता को कैसे प्रभावित करते हैं, मीडिया जनमत को किस प्रकार आकार देता है तथा आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ राजनीतिक निर्णयों को कैसे प्रभावित करती हैं।

उदाहरण के लिए, भारतीय संविधान प्रत्येक नागरिक को मतदान का अधिकार प्रदान करता है। परन्तु व्यवहारवादी राजनीतिक वैज्ञानिक केवल इस अधिकार का उल्लेख करके संतुष्ट नहीं होगा। वह यह जानने का प्रयास करेगा कि—

- युवा मतदाताओं का मतदान प्रतिशत किन कारणों से बदलता है।
- महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी किन सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होती है।
- ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के मतदान व्यवहार में क्या अंतर है।
- शिक्षा, आय, जाति, धर्म तथा सोशल मीडिया राजनीतिक निर्णयों को किस प्रकार प्रभावित करते हैं।

इन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए व्यवहारवादी शोधकर्ता केवल पुस्तकों का अध्ययन नहीं करता, बल्कि क्षेत्र में जाकर लोगों से बातचीत करता है, सर्वेक्षण करता है, आँकड़ों का विश्लेषण करता है तथा वैज्ञानिक निष्कर्ष प्रस्तुत करता है।

इसी कारण व्यवहारवादी उपागम को "राजनीतिक व्यवहार का विज्ञान" भी कहा जाता है।

## **व्यवहारवादी उपागम की प्रमुख विशेषताएँ (CHARACTERISTICS OF THE BEHAVIOURAL APPROACH)**

व्यवहारवादी उपागम ने राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन को एक नई दिशा प्रदान की। इसका उद्देश्य केवल राजनीतिक घटनाओं का वर्णन करना नहीं था, बल्कि उन्हें वैज्ञानिक ढंग से समझना, उनका विश्लेषण करना तथा सामान्य सिद्धांतों का निर्माण करना था। व्यवहारवादी विद्वानों का विश्वास था कि यदि प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति राजनीतिक घटनाओं का भी व्यवस्थित अध्ययन किया जाए, तो राजनीति के संबंध में अधिक विश्वसनीय और प्रमाणिक निष्कर्ष प्राप्त किए जा सकते हैं।

डेविड ईस्टन (David Easton) ने व्यवहारवादी उपागम की कुछ मूलभूत विशेषताओं (Intellectual Foundations of Behaviouralism) का उल्लेख किया है। यद्यपि विभिन्न विद्वानों ने इनकी संख्या अलग-अलग बताई है, परंतु सामान्यतः आठ प्रमुख विशेषताओं को व्यवहारवाद का आधार माना जाता है। इन विशेषताओं ने आधुनिक राजनीतिक अनुसंधान की दिशा को गहराई से प्रभावित किया।

### **(1) नियमितता (Regularities)**

व्यवहारवादी विद्वानों का मानना था कि मानव का राजनीतिक व्यवहार पूर्णतः आकस्मिक नहीं होता। यदि बड़ी संख्या में व्यक्तियों के राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन किया जाए, तो उसमें कुछ नियमित प्रवृत्तियाँ (Patterns) दिखाई देती हैं। इन नियमितताओं के आधार पर सामान्य सिद्धांत विकसित किए जा सकते हैं।

उदाहरण के लिए, यह देखा गया है कि शिक्षा का स्तर बढ़ने पर राजनीतिक जागरूकता और मतदान में भागीदारी सामान्यतः बढ़ती है। इसी प्रकार लोकतांत्रिक देशों में आर्थिक संकट के समय सत्तारूढ़ दल के प्रति मतदाताओं का समर्थन कम होने की प्रवृत्ति अनेक देशों में देखी गई है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार अलग हो सकता है, फिर भी व्यापक स्तर पर कुछ समान पैटर्न दिखाई देते हैं।

भारत में निर्वाचन आयोग तथा विभिन्न शोध संस्थानों द्वारा समय-समय पर किए गए चुनावी अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि महिलाओं की मतदान भागीदारी पिछले दो दशकों में निरंतर बढ़ी है। यह केवल एक संयोग नहीं, बल्कि एक दीर्घकालिक राजनीतिक प्रवृत्ति है, जिसका अध्ययन व्यवहारवादी दृष्टिकोण से किया जाता है।

इस प्रकार व्यवहारवाद राजनीतिक घटनाओं में निहित नियमितताओं को पहचानकर राजनीतिक सिद्धांतों का निर्माण करने का प्रयास करता है।

### **(2) सत्यापन (Verification)**

व्यवहारवादी उपागम का दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धांत है—**सत्यापन (Verification)**। किसी भी राजनीतिक निष्कर्ष को केवल अनुमान, परंपरा या व्यक्तिगत विश्वास के आधार पर स्वीकार नहीं किया जा सकता। प्रत्येक निष्कर्ष का परीक्षण प्रमाणों और तथ्यों के आधार पर होना चाहिए।

यदि कोई शोधकर्ता यह दावा करता है कि सोशल मीडिया युवाओं के मतदान व्यवहार को प्रभावित करता है, तो उसे इस कथन के समर्थन में पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत करने होंगे। इसके लिए वह प्रश्नावली, साक्षात्कार, सर्वेक्षण, मतदान आँकड़े तथा सांख्यिकीय विश्लेषण का उपयोग करेगा। यदि अन्य शोधकर्ता भी समान परिस्थितियों में अध्ययन करके लगभग समान परिणाम प्राप्त करते हैं, तो उस निष्कर्ष की विश्वसनीयता बढ़ जाती है।

उदाहरण के लिए, यदि किसी विश्वविद्यालय में यह अध्ययन किया जाए कि प्रथम बार मतदान करने वाले विद्यार्थियों में कितने प्रतिशत ने मतदान से पूर्व राजनीतिक जानकारी सोशल मीडिया से प्राप्त की, तो इस निष्कर्ष को अन्य विश्वविद्यालयों में भी जाँचकर सत्यापित किया जा सकता है। इस प्रकार व्यवहारवादी अनुसंधान पुनः परीक्षण (Replicability) को महत्त्व देता है।

### **(3) अनुसंधान तकनीकों का प्रयोग (Use of Scientific Techniques)**

व्यवहारवादी उपागम का एक प्रमुख योगदान यह है कि इसने राजनीतिक विज्ञान में वैज्ञानिक अनुसंधान तकनीकों का व्यापक प्रयोग प्रारम्भ किया। पहले राजनीतिक अध्ययन मुख्यतः पुस्तकों, संविधानों तथा ऐतिहासिक स्रोतों तक सीमित था, जबकि व्यवहारवाद ने वास्तविक समाज में जाकर तथ्यों के संग्रह पर बल दिया।

इसके अंतर्गत अनेक अनुसंधान तकनीकों का प्रयोग किया जाता है, जैसे—

- प्रश्नावली (Questionnaire)
- साक्षात्कार (Interview)
- सर्वेक्षण (Survey)
- सहभागी अवलोकन (Participant Observation)
- मतदान अध्ययन (Voting Studies)
- केस अध्ययन (Case Study)
- सामग्री विश्लेषण (Content Analysis)
- जनमत सर्वेक्षण (Opinion Polls)

उदाहरण के लिए, यदि किसी राज्य में मतदाता महिलाओं की राजनीतिक प्राथमिकताओं का अध्ययन करना हो, तो शोधकर्ता विभिन्न जिलों से प्रतिनिधिक (Representative) नमूना चुनकर प्रश्नावली के माध्यम से जानकारी एकत्र करेगा। इसके पश्चात सांख्यिकीय विश्लेषण द्वारा निष्कर्ष निकाले जाएँगे। यही वैज्ञानिक अनुसंधान प्रक्रिया व्यवहारवादी उपागम की विशेषता है।

### **(4) परिमाणीकरण (Quantification)**

व्यवहारवादी विद्वानों का मानना था कि जहाँ तक संभव हो, राजनीतिक तथ्यों को संख्यात्मक (Quantitative) रूप में व्यक्त किया जाना चाहिए। इससे निष्कर्ष अधिक स्पष्ट, तुलनात्मक तथा विश्वसनीय बनते हैं।

उदाहरण के लिए, यदि केवल यह कहा जाए कि "युवा बड़ी संख्या में मतदान करते हैं", तो यह एक सामान्य कथन होगा। लेकिन यदि यह कहा जाए कि "18-25 वर्ष आयु वर्ग के 68 प्रतिशत युवाओं ने मतदान किया", तो यह अधिक वैज्ञानिक और प्रमाणिक निष्कर्ष होगा।

आज चुनाव परिणामों, जनमत सर्वेक्षणों, नीति मूल्यांकन, संसद में महिलाओं के प्रतिनिधित्व, शिक्षा के स्तर तथा राजनीतिक भागीदारी से संबंधित अधिकांश अध्ययन सांख्यिकीय आँकड़ों के आधार पर किए जाते हैं।

भारत में लोकसभा चुनावों के दौरान निर्वाचन आयोग द्वारा प्रकाशित मतदान प्रतिशत, महिला मतदाताओं की भागीदारी, NOTA का उपयोग तथा विभिन्न राज्यों के मतदान आँकड़ों पर परिमाणीकरण के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

## (5) मूल्य-निरपेक्षता (Value Neutrality)

व्यवहारवादी उपागम का एक अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्धांत यह है कि राजनीतिक अनुसंधान यथासंभव **मूल्य-निरपेक्ष (Value Neutral)** होना चाहिए। शोधकर्ता को अपने व्यक्तिगत राजनीतिक विचारों, धार्मिक विश्वासों, वैचारिक झुकाव अथवा भावनात्मक दृष्टिकोण से ऊपर उठकर तथ्यों का निष्पक्ष विश्लेषण करना चाहिए।

उदाहरण के लिए, यदि कोई शोधकर्ता किसी राजनीतिक दल का समर्थक है, तो उसे अपने अनुसंधान में उस दल के पक्ष या विपक्ष में पक्षपात नहीं करना चाहिए। उसका निष्कर्ष केवल उपलब्ध तथ्यों, प्रमाणों तथा वैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित होना चाहिए।

इसका अर्थ यह नहीं है कि शोधकर्ता के व्यक्तिगत मूल्य समाप्त हो जाते हैं, बल्कि यह है कि अनुसंधान प्रक्रिया में वे उसके निष्कर्षों को प्रभावित नहीं करने चाहिए।

हालाँकि बाद में उत्तर-व्यवहारवादी विद्वानों ने इसी सिद्धांत की आलोचना करते हुए कहा कि पूर्ण मूल्य-निरपेक्षता व्यवहार में संभव नहीं है। इस पर हम अगले अनुभाग में विस्तार से चर्चा करेंगे।

## (6) व्यवस्थीकरण (Systematization)

व्यवहारवादी अध्ययन में तथ्यों का संग्रह केवल जानकारी एकत्र करने के लिए नहीं किया जाता। उनका उद्देश्य व्यवस्थित विश्लेषण करके सामान्य सिद्धांत विकसित करना होता है।

एक अच्छा राजनीतिक शोध सामान्यतः निम्न चरणों का पालन करता है—

समस्या की पहचान → परिकल्पना (Hypothesis) → तथ्य संग्रह → डेटा विश्लेषण → निष्कर्ष → सिद्धांत निर्माण।

उदाहरण के लिए, यदि यह परिकल्पना बनाई जाए कि "उच्च शिक्षा प्राप्त मतदाता राजनीतिक रूप से अधिक सक्रिय होते हैं", तो शोधकर्ता पहले विभिन्न क्षेत्रों से आँकड़ें एकत्र करेगा, फिर उनका सांख्यिकीय विश्लेषण करेगा और अंततः यह निष्कर्ष निकालेगा कि परिकल्पना सही है या नहीं।

इस प्रकार व्यवहारवादी अनुसंधान एक व्यवस्थित वैज्ञानिक प्रक्रिया का अनुसरण करता है, न कि केवल सामान्य अवलोकन का।

## (7) विशुद्ध विज्ञान की भावना (Pure Science Orientation)

व्यवहारवादी विद्वानों का मत था कि राजनीतिक विज्ञान का प्राथमिक उद्देश्य राजनीतिक घटनाओं को समझना और उनके संबंध में वैज्ञानिक ज्ञान विकसित करना होना चाहिए। अनुसंधान का उद्देश्य तत्काल राजनीतिक सुधार करना नहीं, बल्कि पहले तथ्यों को सही ढंग से समझना है।

उदाहरण के लिए, यदि किसी शोधकर्ता का अध्ययन यह बताता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में मतदान प्रतिशत शहरी क्षेत्रों की तुलना में अधिक है, तो उसका पहला कार्य इस तथ्य की वैज्ञानिक व्याख्या करना होगा। राजनीतिक सुधारों का सुझाव बाद का चरण है।

यद्यपि इस दृष्टिकोण ने राजनीतिक विज्ञान को अधिक वैज्ञानिक बनाया, परन्तु बाद में इसकी आलोचना भी हुई क्योंकि इससे अनुसंधान कई बार वास्तविक सामाजिक समस्याओं से दूर होता दिखाई दिया।

## **(8) अंतर्विषयक दृष्टिकोण (Interdisciplinary Approach)**

व्यवहारवादी उपागम की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक इसका **अंतर्विषयक (Interdisciplinary)** स्वरूप है। व्यवहारवादी विद्वानों का विश्वास था कि राजनीतिक व्यवहार को समझने के लिए केवल राजनीतिक विज्ञान पर्याप्त नहीं है। इसके लिए समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, मानवशास्त्र, सांख्यिकी तथा संचार अध्ययन की सहायता भी आवश्यक है।

उदाहरण के लिए, यदि किसी राज्य में युवा मतदाताओं की राजनीतिक उदासीनता का अध्ययन करना हो, तो केवल चुनाव परिणाम पर्याप्त नहीं होंगे। यह भी देखना होगा कि उनकी शिक्षा, रोजगार, सोशल मीडिया का उपयोग, पारिवारिक वातावरण, आर्थिक स्थिति तथा मनोवैज्ञानिक अपेक्षाएँ क्या हैं। यही अंतर्विषयक दृष्टिकोण व्यवहारवादी अनुसंधान को अधिक व्यापक बनाता है।

आज **Big Data Analytics, Artificial Intelligence, Machine Learning, Political Psychology, Behavioural Economics** तथा **Computational Social Science** जैसे क्षेत्र व्यवहारवादी परंपरा के आधुनिक विस्तार माने जाते हैं। चुनावी रुझानों का विश्लेषण, सोशल मीडिया पर राजनीतिक विमर्श का अध्ययन तथा सार्वजनिक नीतियों के प्रभाव का डेटा-आधारित मूल्यांकन इसी दिशा में विकसित हुए हैं।

इन सभी विशेषताओं से स्पष्ट है कि व्यवहारवादी उपागम ने राजनीतिक विज्ञान को वर्णनात्मक विषय से आगे बढ़ाकर **प्रमाण-आधारित, विश्लेषणात्मक और वैज्ञानिक अनुशासन** के रूप में स्थापित किया। इसके कारण राजनीतिक अनुसंधान अधिक वस्तुनिष्ठ, व्यवस्थित तथा विश्वसनीय बना। फिर भी यह उपागम आलोचनाओं से मुक्त नहीं रहा। अगले अनुभाग में व्यवहारवादी उपागम के **गुण (Merits)** और **सीमाओं (Limitations/Criticisms)** का विस्तृत एवं आलोचनात्मक अध्ययन किया जाएगा।

## **व्यवहारवादी उपागम के गुण (MERITS OF THE BEHAVIOURAL APPROACH)**

व्यवहारवादी उपागम ने राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन में एक युगांतरकारी परिवर्तन प्रस्तुत किया। इसने राजनीति के अध्ययन को दार्शनिक कल्पनाओं, संवैधानिक वर्णनों तथा ऐतिहासिक विवरणों तक सीमित न रखकर वास्तविक राजनीतिक जीवन की ओर उन्मुख किया। इसके परिणामस्वरूप राजनीतिक विज्ञान अधिक वैज्ञानिक, अनुभवजन्य तथा अनुसंधान-प्रधान अनुशासन के रूप में विकसित हुआ। व्यवहारवादी उपागम के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं—

## (1) राजनीतिक विज्ञान को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया

व्यवहारवादी उपागम का सबसे बड़ा योगदान यह है कि इसने राजनीतिक विज्ञान को वैज्ञानिक अध्ययन की दिशा में अग्रसर किया। इसके पूर्व राजनीतिक अध्ययन मुख्यतः आदर्शों, मूल्यों तथा संस्थागत विवरणों पर आधारित था, जबकि व्यवहारवाद ने तथ्य-संग्रह, परिकल्पना, परीक्षण, सत्यापन तथा निष्कर्ष जैसी वैज्ञानिक प्रक्रियाओं को अनुसंधान का आधार बनाया।

आज चुनावी अध्ययन, जनमत सर्वेक्षण, नीति मूल्यांकन तथा राजनीतिक सहभागिता से संबंधित अधिकांश अनुसंधान इसी वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित हैं। इससे राजनीतिक निष्कर्ष अधिक विश्वसनीय तथा प्रमाण-आधारित बन गए।

## (2) वास्तविक राजनीतिक व्यवहार पर बल

व्यवहारवादी विद्वानों का मानना था कि संविधान और संस्थाएँ तभी अर्थपूर्ण हैं जब यह समझा जाए कि व्यवहार में वे किस प्रकार कार्य करती हैं। इसलिए उन्होंने राज्य के स्थान पर नागरिक, मतदाता, नेता, राजनीतिक दल, दबाव समूह तथा नौकरशाही के व्यवहार को अध्ययन का केंद्र बनाया।

उदाहरण के लिए, संविधान प्रत्येक नागरिक को मतदान का अधिकार देता है, किन्तु व्यवहारवादी अध्ययन यह जानने का प्रयास करता है कि सभी नागरिक मतदान क्यों नहीं करते, किन परिस्थितियों में मतदान प्रतिशत बढ़ता या घटता है तथा मतदाताओं के निर्णय किन कारकों से प्रभावित होते हैं।

इसी प्रकार संसद की संवैधानिक शक्तियों का अध्ययन कानूनी पद्धति का विषय है, जबकि संसद में दलगत अनुशासन, गठबंधन राजनीति, मीडिया के प्रभाव तथा सांसदों के वास्तविक व्यवहार का अध्ययन व्यवहारवादी दृष्टिकोण करता है।

## (3) अनुसंधान तकनीकों का विकास

व्यवहारवादी आंदोलन ने राजनीतिक विज्ञान में अनेक आधुनिक अनुसंधान तकनीकों को लोकप्रिय बनाया। प्रश्नावली, साक्षात्कार, सर्वेक्षण, सहभागी अवलोकन, सामग्री विश्लेषण, मतदान अध्ययन तथा सांख्यिकीय विश्लेषण जैसे उपकरणों का व्यवस्थित उपयोग इसी उपागम की देन है।

भारत में लोकसभा तथा विधानसभा चुनावों के बाद विभिन्न संस्थाओं द्वारा किए जाने वाले **Exit Polls**, **Post-Poll Surveys**, **Voter Behaviour Studies** तथा **लोकनीति-CSDS** जैसे अध्ययनों ने राजनीतिक अनुसंधान को अधिक प्रमाणिक बनाया है। इन अध्ययनों के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया जाता है कि मतदाताओं ने किसी विशेष दल या उम्मीदवार को क्यों चुना तथा उनके निर्णय पर कौन-कौन से कारकों का प्रभाव पड़ा।

## (4) अंतर्विषयक अध्ययन को प्रोत्साहन

व्यवहारवादी उपागम की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसका अंतर्विषयक (Interdisciplinary) स्वरूप है। इसने यह स्वीकार किया कि राजनीतिक व्यवहार को केवल राजनीतिक विज्ञान के माध्यम से नहीं समझा जा सकता। इसके लिए समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, मानवशास्त्र, सांख्यिकी, संचार अध्ययन तथा व्यवहारिक अर्थशास्त्र जैसे विषयों का सहयोग आवश्यक है।

उदाहरण के लिए, यदि किसी क्षेत्र में युवाओं की राजनीतिक उदासीनता का अध्ययन किया जाए, तो केवल चुनावी आँकड़े पर्याप्त नहीं होंगे। यह भी जानना होगा कि उनकी शिक्षा, रोजगार, सामाजिक पृष्ठभूमि, इंटरनेट का उपयोग, राजनीतिक विश्वास तथा मनोवैज्ञानिक अपेक्षाएँ क्या हैं। इस प्रकार व्यवहारवादी अनुसंधान अनेक विषयों के समन्वय पर आधारित होता है।

### **(5) वस्तुनिष्ठता और प्रमाणिकता में वृद्धि**

व्यवहारवाद ने राजनीतिक अनुसंधान में व्यक्तिगत मतों, पूर्वाग्रहों तथा वैचारिक आग्रहों के स्थान पर वस्तुनिष्ठ तथ्यों को महत्त्व दिया। इससे अनुसंधान की विश्वसनीयता बढ़ी।

उदाहरण के लिए, यदि यह अध्ययन करना हो कि महिलाओं का राजनीतिक प्रतिनिधित्व बढ़ रहा है या नहीं, तो केवल सामान्य टिप्पणी करने के स्थान पर संसद, विधानसभाओं तथा स्थानीय निकायों में महिलाओं के प्रतिनिधित्व से संबंधित आँकड़ों का विश्लेषण किया जाएगा। इससे निष्कर्ष अधिक सटीक तथा प्रमाणिक बनते हैं।

### **(6) तुलनात्मक राजनीति के विकास में योगदान**

व्यवहारवादी उपागम ने तुलनात्मक राजनीति (Comparative Politics) को भी नई दिशा प्रदान की। पहले तुलना मुख्यतः संविधानों तथा संस्थाओं तक सीमित थी, जबकि व्यवहारवाद ने विभिन्न देशों की राजनीतिक संस्कृति, मतदाता व्यवहार, नेतृत्व शैली, दल प्रणाली तथा नीति-निर्माण की प्रक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रारम्भ किया।

उदाहरण के लिए, भारत, अमेरिका, जापान और ब्राज़ील जैसे लोकतांत्रिक देशों में मतदाता व्यवहार, दल प्रणाली तथा चुनावी भागीदारी का अध्ययन व्यवहारवादी दृष्टिकोण से किया जाता है। इससे लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं की समानताओं तथा भिन्नताओं को अधिक गहराई से समझा जा सकता है।

### **(7) नीति-निर्माण में उपयोगिता**

यद्यपि व्यवहारवादी विद्वानों का मूल उद्देश्य वैज्ञानिक अध्ययन था, फिर भी उनके अनुसंधानों का उपयोग सार्वजनिक नीति निर्माण में व्यापक रूप से होने लगा।

यदि किसी सर्वेक्षण से यह ज्ञात होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में सरकारी योजनाओं की जानकारी बहुत कम है, तो सरकार जन-जागरूकता अभियान प्रारम्भ कर सकती है। यदि चुनावी अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि दिव्यांग मतदाताओं को मतदान केंद्रों तक पहुँचाने में कठिनाई होती है, तो निर्वाचन आयोग विशेष सुविधाओं की व्यवस्था कर सकता है।

इसी प्रकार शिक्षा, स्वास्थ्य, डिजिटल शासन, महिला सशक्तीकरण तथा स्थानीय प्रशासन से संबंधित अनेक नीतियाँ व्यवहारवादी अनुसंधानों से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर अधिक प्रभावी बनाई जाती हैं।

### **(8) समकालीन राजनीतिक अध्ययन के लिए अत्यंत उपयोगी**

इक्कीसवीं शताब्दी में राजनीति का स्वरूप तीव्र गति से बदल रहा है। सोशल मीडिया, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence), बिग डेटा (Big Data), डिजिटल प्रचार, ऑनलाइन चुनाव अभियान तथा डेटा-आधारित नीति-निर्माण ने राजनीतिक अनुसंधान के नए क्षेत्र विकसित किए हैं।

आज चुनावों के दौरान राजनीतिक दल मतदाताओं की प्राथमिकताओं का विश्लेषण करने के लिए डेटा विश्लेषण का उपयोग करते हैं। सरकारें नागरिकों की प्रतिक्रियाओं को समझने के लिए ऑनलाइन फीडबैक प्लेटफॉर्म विकसित कर रही हैं। सोशल मीडिया पर राजनीतिक विमर्श का अध्ययन करने के लिए मशीन लर्निंग तथा प्राकृतिक भाषा संसाधन (Natural Language Processing) जैसी तकनीकों का प्रयोग किया जा रहा है।

इस प्रकार व्यवहारवादी उपागम केवल बीसवीं शताब्दी तक सीमित नहीं है; बल्कि आधुनिक डिजिटल लोकतंत्र के अध्ययन में भी इसकी उपयोगिता निरंतर बढ़ रही है।

## **व्यवहारवादी उपागम की सीमाएँ एवं आलोचनाएँ (LIMITATIONS AND CRITICISMS OF THE BEHAVIOURAL APPROACH)**

यद्यपि व्यवहारवादी उपागम ने राजनीतिक विज्ञान को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया, फिर भी समय के साथ इसकी अनेक सीमाएँ सामने आईं। विशेषकर 1960 के दशक के उत्तरार्ध में अनेक विद्वानों ने यह अनुभव किया कि व्यवहारवाद ने राजनीति को अत्यधिक तकनीकी और आँकड़ा-प्रधान बना दिया है तथा मानव मूल्यों और सामाजिक समस्याओं की उपेक्षा की है। इसी आलोचना के परिणामस्वरूप उत्तर-व्यवहारवादी आंदोलन का विकास हुआ।

व्यवहारवादी उपागम की प्रमुख आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं—

### **(1) मूल्यों की उपेक्षा**

व्यवहारवाद का सबसे बड़ा दोष यह माना गया कि उसने राजनीतिक अध्ययन को मूल्य-निरपेक्ष (Value Neutral) बनाने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप न्याय, समानता, स्वतंत्रता, मानवाधिकार, नैतिकता तथा सामाजिक न्याय जैसे मूलभूत राजनीतिक प्रश्न अपेक्षाकृत गौण हो गए।

उदाहरण के लिए, यदि किसी समाज में मतदान प्रतिशत बहुत अधिक है, तो केवल इस तथ्य के आधार पर लोकतंत्र की सफलता का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। यह भी देखना आवश्यक है कि क्या चुनाव स्वतंत्र और निष्पक्ष हैं, क्या सभी नागरिक समान अवसर प्राप्त कर रहे हैं तथा क्या मानवाधिकारों की रक्षा हो रही है। ये प्रश्न केवल आँकड़ों से नहीं, बल्कि मूल्यपरक विश्लेषण से भी जुड़े हैं।

### **(2) अत्यधिक वैज्ञानिकता पर बल**

व्यवहारवादी विद्वानों ने प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धतियों को सामाजिक विज्ञानों में लागू करने का प्रयास किया। आलोचकों का मत है कि मनुष्य का व्यवहार भौतिक वस्तुओं की भाँति स्थिर नहीं होता। उसकी भावनाएँ, संस्कृति, परंपराएँ, विश्वास तथा परिस्थितियाँ निरंतर बदलती रहती हैं।

इस कारण राजनीतिक व्यवहार का पूर्णतः वैज्ञानिक या सार्वभौमिक नियम बनाना अत्यंत कठिन है। दो समान परिस्थितियों में भी अलग-अलग समाजों का राजनीतिक व्यवहार भिन्न हो सकता है।

### **(3) राजनीतिक वास्तविकताओं का आंशिक अध्ययन**

व्यवहारवादी उपागम मुख्यतः व्यक्तियों के व्यवहार पर केंद्रित रहा। परिणामस्वरूप राज्य, संविधान, राजनीतिक दर्शन, इतिहास तथा संस्थागत संरचनाओं के अध्ययन को अपेक्षाकृत कम महत्त्व मिला। जबकि वास्तविक राजनीतिक जीवन में संस्थाएँ और व्यवहार दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।

#### (4) अत्यधिक आँकड़ा-प्रधान दृष्टिकोण

कुछ विद्वानों ने टिप्पणी की कि व्यवहारवादी शोध में कई बार आँकड़ों का संग्रह ही उद्देश्य बन गया और व्यापक राजनीतिक अर्थ की उपेक्षा होने लगी। इस स्थिति का वर्णन करते हुए आलोचकों ने कहा कि व्यवहारवादी शोधकर्ता "माप तो बहुत लेते हैं, परंतु हमेशा यह नहीं समझते कि वास्तव में क्या महत्त्वपूर्ण है।"

#### (5) विकासशील देशों में सीमित उपयोगिता

व्यवहारवादी सिद्धांतों का अधिकांश विकास अमेरिका और पश्चिमी यूरोप के लोकतांत्रिक समाजों में हुआ। इसलिए इन सिद्धांतों को उसी रूप में एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के विकासशील देशों पर लागू करना हमेशा उपयुक्त नहीं माना गया।

भारत जैसे विविधतापूर्ण समाज में जाति, भाषा, धर्म, क्षेत्रीय पहचान, पारिवारिक संरचना तथा सामाजिक असमानताएँ राजनीतिक व्यवहार को गहराई से प्रभावित करती हैं। इसलिए यहाँ व्यवहारवादी विश्लेषण को स्थानीय सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों के साथ जोड़ना आवश्यक है।

इन आलोचनाओं ने राजनीतिक विज्ञान में एक नए बौद्धिक आंदोलन को जन्म दिया, जिसने यह तर्क दिया कि राजनीतिक विज्ञान केवल **तथ्यों का विज्ञान** नहीं, बल्कि **मानव कल्याण का विज्ञान** भी होना चाहिए। यही विचार आगे चलकर **उत्तर-व्यवहारवादी उपागम (Post-Behavioural Approach)** के रूप में विकसित हुआ, जिसका विस्तृत अध्ययन अगले अनुभाग में किया जाएगा।

### 2.4 उत्तर-व्यवहारवादी उपागम (Post-Behavioural Approach)

1960 के दशक के उत्तरार्ध में राजनीतिक विज्ञान के क्षेत्र में एक नया बौद्धिक आंदोलन विकसित हुआ, जिसे **उत्तर-व्यवहारवाद (Post-Behaviouralism)** कहा जाता है। यह आंदोलन व्यवहारवादी उपागम का पूर्णतः विरोध नहीं था, बल्कि उसकी सीमाओं को दूर करने और उसे अधिक प्रासंगिक बनाने का प्रयास था। यदि व्यवहारवाद ने राजनीतिक विज्ञान को वैज्ञानिक बनाया, तो उत्तर-व्यवहारवाद ने उसे **वैज्ञानिक होने के साथ-साथ सामाजिक रूप से उत्तरदायी** बनाने का प्रयास किया।

व्यवहारवादी उपागम ने राजनीति के अध्ययन में तथ्यों, आँकड़ों और वैज्ञानिक अनुसंधान को अत्यधिक महत्त्व दिया। इससे राजनीतिक विज्ञान अधिक व्यवस्थित और प्रमाण-आधारित तो बना, किन्तु धीरे-धीरे यह आलोचना होने लगी कि राजनीतिक अनुसंधान वास्तविक सामाजिक समस्याओं से दूर होता जा रहा है। अनेक शोध अत्यंत परिष्कृत सांख्यिकीय विश्लेषण तो प्रस्तुत करते थे, परन्तु उनका समाज, लोकतंत्र अथवा सार्वजनिक नीति के सुधार में प्रत्यक्ष योगदान सीमित था।

इसी अवधि में विश्व अनेक गंभीर चुनौतियों का सामना कर रहा था। वियतनाम युद्ध, शीत युद्ध, नस्लीय भेदभाव, गरीबी, बेरोज़गारी, उपनिवेशवाद का अंत, मानवाधिकार आंदोलनों का उदय तथा सामाजिक असमानताओं ने यह प्रश्न उठाया कि यदि राजनीतिक विज्ञान इन समस्याओं के समाधान में योगदान नहीं

दे सकता, तो उसकी सामाजिक उपयोगिता क्या है? इस पृष्ठभूमि में उत्तर-व्यवहारवादी आंदोलन का उदय हुआ।

## उत्तर-व्यवहारवाद का उद्भव

उत्तर-व्यवहारवादी आंदोलन का सर्वाधिक श्रेय प्रसिद्ध राजनीतिक वैज्ञानिक **डेविड ईस्टन (David Easton)** को दिया जाता है। वर्ष 1969 में अमेरिकन पॉलिटिकल साइंस एसोसिएशन (APSA) के अध्यक्षीय भाषण में ईस्टन ने स्पष्ट कहा कि राजनीतिक विज्ञान का उद्देश्य केवल ज्ञान का संग्रह करना नहीं, बल्कि समाज की वास्तविक समस्याओं के समाधान में सक्रिय योगदान देना भी होना चाहिए।

ईस्टन ने व्यवहारवाद की उपलब्धियों को स्वीकार करते हुए कहा कि राजनीतिक विज्ञान में वैज्ञानिक अनुसंधान आवश्यक है, किन्तु यदि वह समाज की ज्वलंत समस्याओं से जुड़ा नहीं है, तो उसकी उपयोगिता सीमित रह जाएगी। उन्होंने प्रसिद्ध रूप से कहा कि—

**"Political Science must be relevant as well as rigorous."**

अर्थात् राजनीतिक विज्ञान **वैज्ञानिक (Rigorous)** होने के साथ-साथ **समाज के लिए प्रासंगिक (Relevant)** भी होना चाहिए।

इसी विचार को उत्तर-व्यवहारवाद का मूल आधार माना जाता है।

## उत्तर-व्यवहारवादी उपागम का अर्थ

उत्तर-व्यवहारवादी उपागम वह अध्ययन दृष्टिकोण है जो राजनीतिक अनुसंधान में वैज्ञानिक पद्धतियों को स्वीकार करता है, किन्तु साथ ही यह भी मानता है कि अनुसंधान का उद्देश्य समाज, लोकतंत्र और मानव कल्याण की समस्याओं के समाधान में योगदान देना होना चाहिए।

दूसरे शब्दों में कहा जाए तो—

- व्यवहारवाद पूछता है—**"राजनीति कैसी है?"**
- उत्तर-व्यवहारवाद पूछता है—**"राजनीति कैसी है, और उसे बेहतर कैसे बनाया जा सकता है?"**

यही दोनों दृष्टिकोणों के बीच सबसे महत्वपूर्ण अंतर है।

## उत्तर-व्यवहारवादी उपागम की प्रमुख विशेषताएँ

### (1) प्रासंगिकता (Relevance)

उत्तर-व्यवहारवाद का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत है—**प्रासंगिकता**। राजनीतिक अनुसंधान केवल पुस्तकों और शोध पत्रों तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि उसे समाज की वास्तविक समस्याओं के समाधान में उपयोगी होना चाहिए।

यदि किसी देश में युवाओं में बेरोज़गारी बढ़ रही है, महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी कम है या जलवायु परिवर्तन लोकतांत्रिक शासन को प्रभावित कर रहा है, तो राजनीतिक वैज्ञानिकों को इन विषयों पर अनुसंधान करना चाहिए। ऐसे अध्ययन केवल अकादमिक उपलब्धि नहीं, बल्कि नीति निर्माण में भी सहायक होने चाहिए।

भारत में चुनावी सुधार, महिला आरक्षण, डिजिटल शासन, पंचायती राज, सामाजिक न्याय, पर्यावरण संरक्षण तथा ई-गवर्नेंस पर होने वाले अधिकांश समकालीन अध्ययन इसी दृष्टिकोण की उपयोगिता को दर्शाते हैं।

## **(2) सामाजिक उत्तरदायित्व (Action and Commitment)**

उत्तर-व्यवहारवादी विद्वानों का मत था कि राजनीतिक वैज्ञानिक समाज से अलग नहीं रह सकता। वह केवल एक निष्क्रिय पर्यवेक्षक (Passive Observer) नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का सक्रिय सहभागी भी है।

उदाहरण के लिए, यदि किसी क्षेत्र में लोकतांत्रिक अधिकारों का उल्लंघन हो रहा है, तो राजनीतिक वैज्ञानिक का दायित्व केवल आँकड़े प्रस्तुत करना नहीं, बल्कि उन समस्याओं का विश्लेषण करना और समाधान के सुझाव देना भी है।

इस प्रकार उत्तर-व्यवहारवाद ज्ञान को समाज की सेवा का माध्यम मानता है।

## **(3) मूल्यों का महत्त्व (Importance of Values)**

व्यवहारवाद ने मूल्य-निरपेक्षता पर बल दिया था, जबकि उत्तर-व्यवहारवाद ने स्पष्ट किया कि राजनीति का अध्ययन पूर्णतः मूल्यों से अलग नहीं किया जा सकता।

लोकतंत्र, स्वतंत्रता, समानता, न्याय, मानवाधिकार, सामाजिक समावेशन और संवैधानिक नैतिकता जैसे मूल्य राजनीति के मूल आधार हैं। यदि राजनीतिक अनुसंधान इन मूल्यों की उपेक्षा करेगा, तो वह अधूरा रह जाएगा।

उदाहरण के लिए, यदि किसी अध्ययन में यह पाया जाए कि किसी समुदाय की मतदान भागीदारी कम है, तो केवल आँकड़े प्रस्तुत करना पर्याप्त नहीं होगा। यह भी समझना आवश्यक होगा कि क्या इसके पीछे सामाजिक भेदभाव, आर्थिक विषमता या राजनीतिक बहिष्करण जैसी समस्याएँ कार्य कर रही हैं।

## **(4) वैज्ञानिकता और मानवीय दृष्टिकोण का समन्वय**

उत्तर-व्यवहारवाद वैज्ञानिक अनुसंधान का विरोध नहीं करता। वह सर्वेक्षण, सांख्यिकीय विश्लेषण तथा अनुभवजन्य अध्ययन को स्वीकार करता है, किन्तु यह भी मानता है कि वैज्ञानिकता का उद्देश्य मानव कल्याण होना चाहिए।

इस प्रकार उत्तर-व्यवहारवाद ने व्यवहारवाद और पारंपरिक मूल्यपरक राजनीति के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया।

यदि सरकार कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) आधारित निगरानी प्रणाली लागू करती है, तो व्यवहारवादी शोधकर्ता नागरिकों की प्रतिक्रिया, उपयोगिता और प्रभाव का अध्ययन करेगा। उत्तर-व्यवहारवादी शोधकर्ता इन प्रश्नों के साथ यह भी पूछेगा कि क्या यह व्यवस्था नागरिकों की निजता, स्वतंत्रता और मानवाधिकारों का सम्मान करती है। इस प्रकार उत्तर-व्यवहारवाद तथ्य और मूल्य दोनों को समान महत्त्व देता है।

## (5) नीति-उन्मुख अनुसंधान (Policy-Oriented Research)

उत्तर-व्यवहारवादी दृष्टिकोण में अनुसंधान का अंतिम उद्देश्य केवल सिद्धांत निर्माण नहीं, बल्कि सार्वजनिक नीतियों को अधिक प्रभावी बनाना भी है।

उदाहरण के लिए, यदि किसी अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में सरकारी योजनाओं की जानकारी का अभाव है, तो शोधकर्ता केवल इस तथ्य को प्रकाशित नहीं करेगा, बल्कि जन-जागरूकता अभियान, स्थानीय प्रशासन की क्षमता-वृद्धि तथा डिजिटल सूचना प्रणाली जैसे सुझाव भी प्रस्तुत करेगा।

इसी प्रकार चुनाव सुधार, शिक्षा नीति, स्वास्थ्य नीति, महिला सशक्तीकरण तथा पर्यावरणीय शासन पर आधारित अधिकांश समकालीन अनुसंधान नीति-उन्मुख होते हैं।

## (6) अंतर्विषयक एवं समकालीन दृष्टिकोण

उत्तर-व्यवहारवाद ने व्यवहारवाद की अंतर्विषयक परंपरा को और अधिक विस्तृत बनाया। आज राजनीतिक अनुसंधान में राजनीति विज्ञान के साथ-साथ डेटा विज्ञान, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, जलवायु अध्ययन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, मीडिया अध्ययन तथा व्यवहारिक अर्थशास्त्र का भी उपयोग किया जाता है।

कोविड-19 महामारी के दौरान सरकारों की नीतियों का मूल्यांकन केवल स्वास्थ्य आँकड़ों के आधार पर नहीं किया गया। राजनीतिक वैज्ञानिकों ने नागरिकों के विश्वास, प्रशासनिक पारदर्शिता, लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व, संघीय समन्वय तथा सार्वजनिक सहभागिता का भी अध्ययन किया। यह उत्तर-व्यवहारवादी दृष्टिकोण का उत्कृष्ट उदाहरण है।

## उत्तर-व्यवहारवाद का समकालीन महत्त्व

इक्कीसवीं शताब्दी में उत्तर-व्यवहारवादी दृष्टिकोण पहले की अपेक्षा अधिक प्रासंगिक हो गया है। आज विश्व जलवायु परिवर्तन, साइबर सुरक्षा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल गोपनीयता, वैश्विक महामारी, प्रवासन, आर्थिक असमानता तथा लोकतांत्रिक ध्रुवीकरण जैसी जटिल चुनौतियों का सामना कर रहा है। इन समस्याओं का समाधान केवल सांख्यिकीय विश्लेषण से संभव नहीं है; इसके लिए वैज्ञानिक अनुसंधान के साथ नैतिक मूल्यों, लोकतांत्रिक आदर्शों और मानव कल्याण को भी समान महत्त्व देना आवश्यक है।

भारत में डिजिटल इंडिया, ई-गवर्नेंस, प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT), आधार आधारित सेवाएँ, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, जलवायु परिवर्तन से संबंधित नीतियाँ तथा महिला राजनीतिक प्रतिनिधित्व जैसे विषयों पर किए जा रहे अधिकांश नीति-अध्ययन उत्तर-व्यवहारवादी दृष्टिकोण के उत्कृष्ट उदाहरण

हैं। इनमें केवल यह नहीं देखा जाता कि नीतियाँ लागू हुई या नहीं, बल्कि यह भी विश्लेषण किया जाता है कि उन्होंने नागरिकों के जीवन, समान अवसरों, पारदर्शिता तथा लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व पर क्या प्रभाव डाला।

इस प्रकार उत्तर-व्यवहारवाद ने राजनीतिक विज्ञान को केवल "राजनीति के अध्ययन का विज्ञान" नहीं रहने दिया, बल्कि उसे "समाज के परिवर्तन और मानव कल्याण का उत्तरदायी विज्ञान" बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

## चिंतन एवं विमर्श (REFLECTION AND CRITICAL DISCUSSION)

राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन केवल सिद्धांतों, परिभाषाओं और अवधारणाओं को याद करने तक सीमित नहीं है। इसका वास्तविक उद्देश्य विद्यार्थियों में ऐसी विश्लेषणात्मक क्षमता विकसित करना है, जिसके माध्यम से वे राजनीतिक घटनाओं, नीतियों तथा समकालीन चुनौतियों का तार्किक और आलोचनात्मक मूल्यांकन कर सकें। अध्ययन पद्धतियों एवं उपागमों का महत्व भी इसी कारण है कि वे हमें राजनीति को देखने के विभिन्न दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। एक ही राजनीतिक घटना का विश्लेषण अलग-अलग उपागमों से करने पर भिन्न-भिन्न निष्कर्ष प्राप्त हो सकते हैं। इसलिए राजनीतिक विज्ञान में किसी एक पद्धति को अंतिम या पूर्ण नहीं माना जाता।

उदाहरण के लिए, यदि भारत में आम चुनावों का अध्ययन किया जाए, तो परम्परागत अध्ययन पद्धतियाँ मुख्यतः निर्वाचन आयोग की संवैधानिक स्थिति, चुनाव संबंधी कानूनी प्रावधानों तथा निर्वाचन प्रक्रिया पर ध्यान देंगी। इसके विपरीत व्यवहारवादी उपागम यह जानने का प्रयास करेगा कि मतदाता किस आधार पर मतदान करते हैं, युवाओं और महिलाओं के मतदान व्यवहार में क्या परिवर्तन आया है, राजनीतिक दल चुनाव प्रचार में किन रणनीतियों का उपयोग करते हैं तथा सोशल मीडिया मतदाताओं के निर्णयों को किस प्रकार प्रभावित करता है। वहीं उत्तर-व्यवहारवादी दृष्टिकोण इन दोनों से आगे बढ़कर यह प्रश्न उठाएगा कि क्या चुनावी प्रक्रिया वास्तव में लोकतांत्रिक मूल्यों को सुदृढ़ कर रही है, क्या सभी वर्गों को समान राजनीतिक अवसर प्राप्त हैं तथा क्या चुनावी व्यवस्था नागरिकों के विश्वास को मजबूत कर रही है।

इसी प्रकार यदि किसी देश में भ्रष्टाचार की समस्या का अध्ययन करना हो, तो ऐतिहासिक पद्धति उसके विकासक्रम को स्पष्ट करेगी, कानूनी पद्धति भ्रष्टाचार-निरोधी कानूनों एवं संस्थाओं का विश्लेषण करेगी, व्यवहारवादी उपागम नागरिकों, राजनेताओं और प्रशासनिक अधिकारियों के व्यवहार का अध्ययन करेगा, जबकि उत्तर-व्यवहारवादी दृष्टिकोण यह विचार करेगा कि भ्रष्टाचार को कम करने के लिए कौन-से संस्थागत, नैतिक तथा नीतिगत सुधार आवश्यक हैं। इससे स्पष्ट होता है कि प्रत्येक अध्ययन पद्धति राजनीति के किसी विशेष पक्ष को अधिक प्रभावी ढंग से समझाती है।

आज के डिजिटल युग में राजनीतिक विज्ञान की अध्ययन पद्धतियाँ और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गई हैं। सोशल मीडिया, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence), बिग डेटा, डिजिटल प्रचार, ऑनलाइन जनमत तथा डेटा विश्लेषण ने राजनीति के स्वरूप को बदल दिया है। चुनावी अभियानों में डिजिटल माध्यमों का बढ़ता उपयोग, राजनीतिक संदेशों का लक्षित प्रसार (Targeted Campaigning), ऑनलाइन जनमत सर्वेक्षण तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित विश्लेषण आधुनिक राजनीतिक अनुसंधान के नए क्षेत्र बन चुके हैं। ऐसे विषयों का अध्ययन केवल परम्परागत पद्धतियों से संभव नहीं है; इसके लिए व्यवहारवादी तथा उत्तर-व्यवहारवादी दोनों दृष्टिकोणों की आवश्यकता होती है।

उदाहरण के लिए, यदि किसी राज्य सरकार द्वारा कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित सार्वजनिक शिकायत निवारण प्रणाली विकसित की जाती है, तो व्यवहारवादी शोधकर्ता नागरिकों की संतुष्टि, शिकायतों के निस्तारण की गति तथा सेवा की दक्षता का अध्ययन करेगा। दूसरी ओर उत्तर-व्यवहारवादी शोधकर्ता यह भी विश्लेषण करेगा कि क्या इस प्रणाली में पारदर्शिता है, क्या सभी नागरिक समान रूप से इसका लाभ उठा पा रहे हैं, क्या डिजिटल रूप से वंचित वर्ग पीछे नहीं छूट रहे तथा क्या नागरिकों की निजता और डेटा सुरक्षा सुनिश्चित की गई है। इस प्रकार समकालीन राजनीतिक अनुसंधान में तथ्य और मूल्य दोनों का संतुलन आवश्यक हो जाता है।

भारतीय लोकतंत्र के संदर्भ में भी अध्ययन पद्धतियों की उपयोगिता स्पष्ट दिखाई देती है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, जहाँ भाषा, धर्म, जाति, संस्कृति, क्षेत्रीय विविधता तथा सामाजिक-आर्थिक असमानताओं जैसी अनेक विशेषताएँ राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करती हैं। इसलिए भारतीय राजनीति को समझने के लिए केवल संवैधानिक अध्ययन पर्याप्त नहीं है। यह भी आवश्यक है कि मतदाताओं की राजनीतिक चेतना, महिलाओं की बढ़ती भागीदारी, युवाओं की राजनीतिक प्राथमिकताएँ, क्षेत्रीय दलों का प्रभाव, मीडिया की भूमिका तथा कल्याणकारी योजनाओं के राजनीतिक प्रभाव का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, महिला आरक्षण, पंचायती राज, डिजिटल इंडिया, स्वच्छ भारत मिशन, प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT), आधार आधारित सेवाएँ तथा जलवायु परिवर्तन से संबंधित नीतियाँ ऐसे उदाहरण हैं जिनका समग्र अध्ययन तभी संभव है जब विभिन्न अध्ययन पद्धतियों का समन्वित उपयोग किया जाए। कोई भी एक उपागम इन सभी पहलुओं की संपूर्ण व्याख्या नहीं कर सकता।

राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन का अनुभव यह बताता है कि परम्परागत और आधुनिक उपागमों के बीच चयन करने की अपेक्षा उनका समन्वय अधिक उपयोगी है। इतिहास हमें राजनीतिक संस्थाओं की जड़ों से परिचित कराता है; दर्शन हमें न्याय, स्वतंत्रता और समानता जैसे मूल्यों का बोध कराता है; कानूनी अध्ययन शासन की संरचना को स्पष्ट करता है; तुलनात्मक पद्धति वैश्विक अनुभवों से सीखने का अवसर देती है; व्यवहारवादी उपागम वास्तविक राजनीतिक व्यवहार को समझाता है; और उत्तर-व्यवहारवादी दृष्टिकोण यह सुनिश्चित करता है कि राजनीतिक अनुसंधान समाज के कल्याण और लोकतांत्रिक मूल्यों से जुड़ा रहे।

इसी कारण समकालीन राजनीतिक विज्ञान में यह स्वीकार किया जाता है कि **कोई भी अध्ययन पद्धति अपने आप में पूर्ण नहीं होती।** प्रत्येक पद्धति राजनीति के किसी विशिष्ट आयाम को समझने में सहायता करती है। एक सक्षम राजनीतिक वैज्ञानिक वह है जो अध्ययन के उद्देश्य, समस्या की प्रकृति तथा उपलब्ध तथ्यों के अनुसार उपयुक्त पद्धति का चयन करे तथा आवश्यकता होने पर विभिन्न उपागमों का समन्वित उपयोग करे। यही समन्वित दृष्टिकोण राजनीतिक विज्ञान को अधिक व्यापक, वैज्ञानिक, मानवीय तथा समकालीन बनाता है।

## 2.5 अध्याय का सारांश (Chapter Summary)

इस अध्याय में राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन की प्रमुख पद्धतियों (Methods of Study) तथा उपागमों (Approaches) का विस्तृत अध्ययन किया गया। प्रारम्भ में यह स्पष्ट किया गया कि किसी भी विषय का व्यवस्थित अध्ययन एक उपयुक्त अध्ययन पद्धति के बिना संभव नहीं है। अध्ययन पद्धति शोधकर्ता को यह बताती है कि किसी राजनीतिक समस्या का अध्ययन किस प्रकार किया जाए, तथ्य कैसे एकत्र किए जाएँ, उनका विश्लेषण कैसे किया जाए तथा निष्कर्ष किस आधार पर निकाले जाएँ।

अध्याय के प्रथम भाग में परम्परागत अध्ययन पद्धतियों का विश्लेषण किया गया। दार्शनिक पद्धति ने आदर्श राज्य, न्याय, स्वतंत्रता तथा समानता जैसे मूल्यों को राजनीतिक चिंतन का आधार बनाया। ऐतिहासिक पद्धति ने राजनीतिक संस्थाओं एवं विचारों के विकासक्रम को समझने पर बल दिया। कानूनी अथवा संस्थागत पद्धति ने संविधान, कानून तथा शासन संस्थाओं की संरचना और कार्यप्रणाली का अध्ययन किया, जबकि तुलनात्मक पद्धति ने विभिन्न देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना के माध्यम से राजनीति को अधिक व्यापक दृष्टि से समझने का अवसर प्रदान किया।

इसके पश्चात व्यवहारवादी उपागम का अध्ययन किया गया। व्यवहारवादी आंदोलन ने राजनीतिक विज्ञान का ध्यान औपचारिक संस्थाओं से हटाकर वास्तविक राजनीतिक व्यवहार की ओर केंद्रित किया। इस उपागम ने वैज्ञानिक अनुसंधान, अनुभवजन्य तथ्यों, वस्तुनिष्ठता, सांख्यिकीय विश्लेषण तथा अंतर्विषयक अध्ययन को राजनीतिक अनुसंधान का आधार बनाया। डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित व्यवहारवाद की प्रमुख विशेषताओं—नियमितता, सत्यापन, अनुसंधान तकनीकों का प्रयोग, परिमाणीकरण, मूल्य-निरपेक्षता, व्यवस्थीकरण, विशुद्ध विज्ञान तथा अंतर्विषयक दृष्टिकोण—का विस्तार से अध्ययन किया गया। साथ ही इसके गुणों तथा सीमाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया।

अध्याय के अगले भाग में उत्तर-व्यवहारवादी उपागम का अध्ययन किया गया। यह स्पष्ट किया गया कि उत्तर-व्यवहारवाद व्यवहारवाद का विरोध नहीं, बल्कि उसका विकास है। इसने वैज्ञानिक अनुसंधान के साथ-साथ सामाजिक प्रासंगिकता, मानवीय मूल्यों, लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व तथा सार्वजनिक नीति से अनुसंधान को जोड़ने पर बल दिया। डेविड ईस्टन के विचारों के आधार पर यह समझाया गया कि राजनीतिक विज्ञान का उद्देश्य केवल ज्ञान का विस्तार नहीं, बल्कि समाज के समक्ष उपस्थित वास्तविक समस्याओं के समाधान में योगदान देना भी होना चाहिए।

अध्याय में व्यवहारवाद एवं उत्तर-व्यवहारवाद का विश्लेषणात्मक तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया। इससे यह स्पष्ट हुआ कि व्यवहारवाद राजनीति को समझने के लिए वैज्ञानिक उपकरण प्रदान करता है, जबकि उत्तर-व्यवहारवाद यह सुनिश्चित करता है कि यह वैज्ञानिक ज्ञान समाज, लोकतंत्र तथा मानव कल्याण के लिए उपयोगी भी हो।

अंततः यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया कि समकालीन राजनीतिक विज्ञान में किसी एक अध्ययन पद्धति को पूर्ण नहीं माना जाता। राजनीतिक घटनाओं की जटिलता को समझने के लिए दार्शनिक, ऐतिहासिक, कानूनी, तुलनात्मक, व्यवहारवादी तथा उत्तर-व्यवहारवादी सभी दृष्टिकोणों का संतुलित एवं समन्वित उपयोग आवश्यक है। यही समन्वित दृष्टिकोण आधुनिक राजनीतिक विज्ञान को अधिक वैज्ञानिक, विश्लेषणात्मक, व्यावहारिक तथा समाजोपयोगी बनाता है।

## 2.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

### (A) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (OBJECTIVE QUESTIONS)

#### बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs)

1. व्यवहारवादी आंदोलन का प्रमुख केंद्र कौन-सा देश था?

- (a) फ्रांस
- (b) जर्मनी
- (c) संयुक्त राज्य अमेरिका
- (d) रूस

**उत्तर:** (c)

**2. "Politics is Who Gets What, When and How" कथन किसका है?**

- (a) डेविड ईस्टन
- (b) चार्ल्स मेरियम
- (c) हैरोल्ड डी. लासवेल
- (d) रॉबर्ट डाहल

**उत्तर:** (c)

**3. निम्नलिखित में से कौन-सी व्यवहारवाद की विशेषता नहीं है?**

- (a) सत्यापन
- (b) नियमितता
- (c) मूल्य-निरपेक्षता
- (d) आध्यात्मिकता

**उत्तर:** (d)

**4. उत्तर-व्यवहारवादी आंदोलन का प्रमुख प्रवर्तक किसे माना जाता है?**

- (a) डेविड ईस्टन
- (b) अरस्तू
- (c) मैकियावेली
- (d) रूसो

**उत्तर:** (a)

5. राजनीतिक विज्ञान में तुलनात्मक पद्धति के प्रारम्भिक प्रवर्तक माने जाते हैं—

- (a) प्लेटो
- (b) अरस्तू
- (c) लॉक
- (d) हॉब्स

उत्तर: (b)

**रिक्त स्थान भरिए**

1. राजनीतिक विज्ञान का वैज्ञानिक अध्ययन करने वाले आधुनिक आंदोलन को \_\_\_\_\_ कहा जाता है।
2. उत्तर-व्यवहारवाद ने \_\_\_\_\_ तथा \_\_\_\_\_ पर विशेष बल दिया।
3. संविधान एवं राजनीतिक संस्थाओं के अध्ययन पर आधारित पद्धति \_\_\_\_\_ कहलाती है।
4. डेविड ईस्टन ने व्यवहारवाद की \_\_\_\_\_ प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया।
5. व्यवहारवादी उपागम मुख्यतः \_\_\_\_\_ के अध्ययन पर बल देता है।

**सही अथवा गलत लिखिए**

1. व्यवहारवादी उपागम केवल संवैधानिक संस्थाओं का अध्ययन करता है।
2. उत्तर-व्यवहारवाद वैज्ञानिक अनुसंधान का विरोध करता है।
3. तुलनात्मक पद्धति विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना करती है।
4. व्यवहारवाद में सर्वेक्षण और सांख्यिकीय विश्लेषण का महत्त्व है।
5. राजनीतिक विज्ञान में कोई एक अध्ययन पद्धति सभी समस्याओं का समाधान नहीं कर सकती।

**(B) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions)**

1. अध्ययन पद्धति (Method of Study) से क्या अभिप्राय है?
2. राजनीतिक विज्ञान में दार्शनिक पद्धति का महत्त्व स्पष्ट कीजिए।
3. ऐतिहासिक पद्धति की दो प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।
4. कानूनी अथवा संस्थागत पद्धति से आप क्या समझते हैं?
5. तुलनात्मक पद्धति का महत्त्व स्पष्ट कीजिए।
6. व्यवहारवादी उपागम की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
7. व्यवहारवाद की कोई चार प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।
8. उत्तर-व्यवहारवादी उपागम का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
9. व्यवहारवाद और उत्तर-व्यवहारवाद में दो प्रमुख अंतर लिखिए।
10. राजनीतिक विज्ञान में अंतर्विषयक अध्ययन का क्या महत्त्व है?

### (C) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Questions)

1. राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन की प्रमुख परम्परागत पद्धतियों का विस्तृत विवेचन कीजिए।
2. व्यवहारवादी उपागम की उत्पत्ति, विशेषताओं, गुणों एवं सीमाओं का आलोचनात्मक अध्ययन कीजिए।
3. उत्तर-व्यवहारवादी उपागम की उत्पत्ति, सिद्धांतों तथा समकालीन महत्त्व का विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. व्यवहारवाद एवं उत्तर-व्यवहारवाद का तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।
5. "राजनीतिक विज्ञान में कोई एक अध्ययन पद्धति पर्याप्त नहीं है।" इस कथन की समालोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

### (D) विश्लेषणात्मक प्रश्न (Analytical Questions)

1. क्या डिजिटल युग में व्यवहारवादी उपागम की उपयोगिता पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ गई है? भारतीय राजनीति के उदाहरणों सहित स्पष्ट कीजिए।
2. क्या केवल वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर राजनीति को समझा जा सकता है? उत्तर-व्यवहारवादी दृष्टिकोण के संदर्भ में विवेचना कीजिए।
3. भारतीय लोकतंत्र के अध्ययन के लिए परम्परागत तथा आधुनिक अध्ययन पद्धतियों का समन्वित उपयोग क्यों आवश्यक है?
4. सोशल मीडिया, कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा बिग डेटा के युग में राजनीतिक विज्ञान की अध्ययन पद्धतियों में कौन-कौन से परिवर्तन दिखाई देते हैं?
5. यदि आपको भारत में युवाओं की राजनीतिक भागीदारी पर शोध करना हो, तो आप किन अध्ययन पद्धतियों का उपयोग करेंगे? कारण सहित स्पष्ट कीजिए।

## 2.7 सुझावित पठन (Suggested Readings)

### Books (APA 7th Edition)

Almond, G. A., & Powell, G. B. (2015). *Comparative politics: System, process and policy* (11th ed.). Pearson.

Appadorai, A. (2007). *The substance of politics*. Oxford University Press.

Easton, D. (1965). *A framework for political analysis*. Prentice-Hall.

Easton, D. (1965). *A systems analysis of political life*. John Wiley & Sons.

Gaubha, O. P. (2023). *An introduction to political theory* (Latest ed.). Mayur Paperbacks.

Heywood, A. (2021). *Politics* (5th ed.). Bloomsbury Academic.

Lasswell, H. D. (1936). *Politics: Who gets what, when, how*. McGraw-Hill.

Mahajan, V. D. (2022). *Political theory: Principles of political science*. S. Chand Publishing.

Ray, S. N. (2021). *Modern comparative politics: Approaches, methods and issues*. PHI Learning.

Verma, S. P. (2019). *Modern political theory*. Vikas Publishing House.

## भारतीय संदर्भ की पुस्तकें (HINDI)

गौबा, ओ. पी. (2022). *राजनीतिक सिद्धांत का परिचय*. मयूर पेपरबैक्स।

महाजन, वी. डी. (2022). *राजनीति विज्ञान के सिद्धांत*. एस. चाँद एंड कंपनी।

शर्मा, प्रभुदत्त, एवं फाड़िया, बी. एल. (2021). *राजनीति विज्ञान*. साहित्य भवन।

अवस्थी, ए., एवं अवस्थी, आर. के. (2020). *आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत*. लक्ष्मी नारायण अग्रवाल।